खुम्माण रासो की कथावस्तु

(PLOT OF KHUMMAN RASO)

(एम.फिल (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक
प्रो. रामबक्ष जाट

शोधार्थी
खुशबू

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

2016

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 25/07/2016

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this M.Phil. Dissertation entitle **"KHUMMAN RASO KI KATHAVASTU"** 'PLOT OF KHUMMAN RASO' by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

KHUSHBOO
(Research Scholar)

PROF. RAMBUX JAT
(Supervisor)
CIL/SLL&CS, JNU
NEW DELHI-110067

PROF. S.M. ANWAR ALAM
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS, JNU
NEW DELHI-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, Jnucil@gmail.com

समर्पित

नानी, नाना जी को.....

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	I – V
पहला अध्याय	
रासो काव्य परम्परा	1 - 23
1.1 उपदेश मूलक रासो ग्रन्थ	
1.2 शृंगार मूलक रासो ग्रन्थ	
1.3 वीररसात्मक रासो ग्रन्थ	
1.4 रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ	
दूसरा अध्याय	
खुम्माण रासो की कथावस्तु	24 - 78
2.1 खुम्माण रासो से सम्बन्धित सूचनाएँ	
2.2 खुम्माण रासो की कथावस्तु	
तीसरा अध्याय	
खुम्माण रासो की कथाशैली	79 - 98
3.1 रस	
3.2 छन्द	
3.3 अलंकार	
3.4 भाषा	
3.5रासो में कथानक रूढ़ियाँ	
3.6रासो की प्रबन्धात्मक रूढ़ियाँ	
उपसंहार	99 - 103
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	104 - 107

भूमिका

हिन्दी साहित्य का इतिहास चार कालों में विभक्त है-(1) आदिकाल (2) भक्तिकाल (3) रीतिकाल (4) आधुनिक काल। आदिकाल को भिन्न- भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। अधिकांश विद्वान हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिये गये नाम 'आदिकाल' से सहमत हैं। आचार्य शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथा' काल नाम दिया है। उन्होंने बारह ग्रन्थों के आधार पर आदिकाल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है।

आदिकालीन साहित्य की रचना भारत के दो भिन्न छोरों पर की जा रही थी पश्चिम और पश्चिमोत्तर भारत में, जहाँ रासो काव्य की रचना हो रही थी, वहीं पूर्वी भारत में सिद्धों के द्वारा रचनाएँ की जा रही थी। अमीर खुसरो मध्य-देश में अपनी पहेलियों और मुकरियों के जरिए जनता की आहत संवेदनाओं को सहलाने की कोशिश कर रहे थे। वहीं विद्यापति पूर्वी भारत के पश्चिमी छोर पर खड़े होकर आदिकालीन साहित्य के इन दोनों छोरों को मिलाने की कोशिश कर रहे थे। नाथ-पंथियों ने तो खुद को पूरे भारत में फैला रखा था। यही पृष्ठभूमि है जिसमें आदिकालीन साहित्य के वीरगाथात्मकता, शृंगारिकता और आध्यात्मिकता के साथ-साथ शुद्ध मनोरंजन की प्रवृत्ति का आर्विभाव होता है।

आदिकालीन साहित्य की इन प्रवृत्तियों के निर्धारण में इसके भौगोलिक परिवेश ने अहम् भूमिका निभाई। पश्चिमोत्तर भारत में सामंती जीवन-मूल्यों के प्रचलन और बाह्य आक्रमण के कारण आंतरिक अव्यवस्था विद्यमान थी। इस आंतरिक अव्यवस्था के प्रति आम लोगों की प्रतिक्रिया एक समान नहीं थी। जनता के एक बड़े हिस्से ने युद्ध और प्रेम को सामंती जीवन-मूल्यों के सच के रूप में स्वीकार कर लिया था। वे लड़ते लड़ते जीना चाहते थे और मरते-मरते भी जीवन का रस भोग लेना चाहते थे। इसी ने वीरगाथात्मकता और शृंगार के समन्वय को जन्म दिया। फलस्वरूप रासो काव्य ग्रन्थों की रचना हुई जैसे- पृथ्वीराज रासो, विजयपाल रासो,खुम्माण रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो आदि।

'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में बहुत से मत प्रचलित हैं। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न- भिन्न मत दिए हैं। आचार्य शुक्ल ने रासो की उत्पत्ति 'रसायन' से बताई है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'रस' से उत्पन्न बताया है। रासो को 'रासक' से भी जोड़ा जाता है। रासक अपभ्रंश में 21 मात्राओं वाला छन्द था। इसमें अक्सर प्रेम और शृंगार की कोमल भावनाओं को अभिव्यक्ति होती थी और बीच-बीच में एकरसता को तोड़ने के लिए लोक में प्रचलित अन्य गेय छन्दों का भी प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार रासो शब्द की यह व्युत्पत्ति यथार्थ के करीब नजर आती है। रासो काव्य का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में किया जा सकता है-

1.शृंगारपरक रासो काव्य- इसके अंतर्गत संदेश रासक और बीसलदेव रासो को रखा जा सकता है। यद्यपि शृंगारिकता की प्रवृत्ति वीरगाथात्मक रासो काव्य में भी मिलती है, लेकिन वीसलदेव रासो और संदेश रासक में शृंगार स्वतन्त्र चित्रण के रूप में मौजूद है। इन काव्यों में सात्विक शृंगार को अभिव्यक्ति मिली है। दोनों विरह काव्य के उदाहरण हैं।

2.धार्मिक और उपदेश मूलक रासो काव्य- इसके अन्तर्गत जैन आचार्यों द्वारा रचित रासो रचनाएँ आती हैं। इनमें धर्म और अध्यात्म की प्रधानता है और धर्म सम्बन्धी नीति व उपदेशों का चित्रण हुआ है। बाहुबली रास, उपदेश रसायन रास,चंदन बाला रास आदि इसके उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

3. वीरगाथात्मक रासो काव्य- इसके अंतर्गत हम्मीर रासो, विजयपाल रासो, पृथ्वीराज रासो, खुम्माण रासो आदि को देखा जा सकता है। इन रचनाओं में वीरगाथात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता है और इसी की पृष्ठभूमि में दबे पाँव शृंगारकता का आगमन होता है।

रासो काव्यों में कल्पना और इतिहास का समावेश हुआ है। ऐतिहासिक कथानक में कल्पना के इसी समावेश के कारण रासो काव्यों की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह उठाया जाता है। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते हुए रासों काव्यों के आधार पर ही वीरगाथात्मकता को इस युग की प्रवृत्ति माना और इसका नाम रखा 'वीरगाथा काल'। लेकिन जब, आधुनिक शोधों के साथ नवीन तथ्य प्रकाश में आए, तो आचार्य शुक्ल की स्थापना को रासो काव्यों की संदिग्ध प्रामाणिकता के आधार पर चुनौती दी जाने लगी। इस क्रम में यह पाया गया कि रासो काव्य ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाते। इससे हम यह तो नहीं कह सकते कि सभी रचनाएँ अप्रामाणिक हैं। यहाँ यह अवश्य है कि कोई भी

रासो मूलरूप में उपलब्ध नहीं है, बल्कि परिवर्तित रूप में उपलब्ध है, अतः समय- समय पर उनमें क्षेपक जोड़े जाते रहे हैं।

खुम्माण रासो भी वीरगाथात्मक रासो काव्य है, इसकी रचना दलपति विजय ने की है।इसके रचनाकाल के विषय में काफी विवाद है। कुछ विद्वान इसे 9 वीं शताब्दी का मानते हैं तथा कुछ विद्वान इसे 17 वीं शताब्दी का मानते हैं। 9वीं शताब्दी का मानने के पीछे कारण यह है कि राजा खुम्माण 9 वीं शताब्दी का है और इसमें मेवाड़ शासक राणा प्रताप और राणा राज सिंह तक का वर्णन है इसलिए 17वीं शताब्दी का माना जाता है। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि मूल रचना के परवर्ती चरण में क्षेपक के अंश जुड़ते चले गये जिससे रचना की प्रामाणिकता संदेहास्पद हो गई। इसका मूल कारण यह भी है कि कर्नल टाड के अतिरिक्त किसी ने भी इस ग्रन्थ के दर्शन तक नहीं किए थे। अगर चन्द नाहटा और डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने खुम्माण रासो की प्रति को देखा और मान्यताएँ स्थापित की। नाहटा ने 1730 और 60 के मध्य और डॉ. मेनारिया ने 1767 से 1790 के मध्य इसकी रचना होने का अनुमान लगाया है। इस ग्रन्थ में कवि ने मेवाड़ के सम्पूर्ण इतिहास को समाहित करने का प्रयास किया है। इसमें बापा रावल से लेकर राणा राज सिंह तक का वर्णन मिलता है किन्तु खुम्माण के चरित्र को उजागर करना कवि का मुख्य उद्देश्य है।

अपने शोध विषय "खुम्माण रासो की कथावस्तु" में मैंने रासो परम्परा के अन्तर्गत खुम्माण रासो की कथा को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। रासो काव्य परम्परा क्या है? उसकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं? रासो काव्य परम्परा की पृष्ठभूमि क्या है? उसे इस शोध द्वारा जानने का प्रयास किया है। खुम्माण रासो की कथा से परिचित कराना इस शोध का मुख्य ध्येय रहा है। साथ ही खुम्माण रासो, रासो काव्य प्रवृत्ति को सिद्ध कर पाने में सफल है या नहीं इसे परखने का प्रयास इस शोध में किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को तीन अध्यायों में बाँटा गया है। पहला अध्याय **'रासो काव्य परम्परा'** है जिसके अंतर्गत आदिकाल की चर्चा की गई है। रासो शब्द की व्युत्पत्ति और रासो काव्य की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है। रासो काव्य परम्परा और उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

दूसरा अध्याय **''खुम्माण रासो की कथावस्तु''** है। इस अध्याय के अन्तर्गत खुम्माण रासो की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

तीसरा अध्याय **"रासो की कथा शैली"** है। इस अध्याय के अन्तर्गत खुम्माण रासो की शैली पर विचार किया गया है जिसमें कथा के उद्देश्य, पात्र, रस,छन्द, अलंकार, भाषा तथा कथानक रूढ़ियों को दर्शाया गया है।

उपसंहार में सभी वैचारिक बिन्दुओं को समेटा गया है। रासो काव्य परम्परा में खुम्माण रासो की क्या भूमिका रही है। कथा, पात्र, वातावरण, उद्देश्य तथा शैली में कवि कहाँ तक सफल हो पाया है इसका मूल्यांकन किया गया है।

किसी भी सार्थक कार्य की सफलता के लिए अनेक लोगों के स्नेह और आशीर्वाद की आवश्यकता होती है। जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हमारे काम को सफल बनाने में हमारी मदद करते हैं। सर्वप्रथम नमन उस ईश्वर को जिसने मुझे इस कार्य को सफलतापूर्वक करने की शक्ति प्रदान की। मैं आभारी हूँ मेरे गुरूवर तथा शोध निर्देशक प्रो. रामबक्ष की, जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय में से मुझे समय दिया। विषय के चुनाव से लेकर शोध कार्य में आने वाली सभी कठिनाइयों का समाधान किया तथा आदिकाल और रासो काव्य पर मेरी समझ को विकसित किया। तत्पश्चात् जे.एन.यू., दिल्ली विश्वविद्यालय तथा साहित्य अकादमी के पुस्तकालयों का आभार जहाँ से मुझे महत्वपूर्ण पुस्तकें प्राप्त हुईं। इसके बाद मैं अपने माता-पिता के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहती हूँ जिनके आर्शीवाद ने मुझे इस काबिल बनाया कि मैं शोध करने योग्य बन सकी।

तत्पश्चात आभार राकेश, राजेश, सुशीला, सुनीता, संगीता, जयप्रकाश, सीमा, शिवानी, मंजू, ओम प्रकाश, उज्जवल आलोक, कुमकुम, मंजरी, आयुषी, चन्द्रकान्ति, ज्योति शर्मा, प्रेरणा, प्रिया, ज्योति तिवारी, अमृता, राजवीर,धर्मेन्द्र, जगदीश और अनिरूद्ध सिंह का जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य को सफल और सार्थक बनाने में योगदान दिया।

खुशबू

अध्याय – 1

रासो काव्य परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरंभ 10वीं सदी से माना जाता है। उस समय से लेकर आज तक हिन्दी साहित्य एक लम्बी दूरी तय कर चुका है। इस दौरान संवेदना और शिल्प और दोनों के ही धरातल पर हिन्दी साहित्य के स्वरूप में व्यापक बदलाव परिलक्षित होते हैं। आरंभ से अब तक हिन्दी साहित्य के स्वरूप में आने वाले इन बदलावों के व्यवस्थित और क्रमबद्ध अध्ययन के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न कालखण्डों में विभाजित किया गया है और फिर तद्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उसके स्वरूप में आने वाले बदलावों की न केवल व्याख्या की गई है, वरन् इसका संकेत देने के लिए युगीन प्रवृत्तियों के आधार पर उस कालखण्ड विशेष का नामकरण भी किया गया है।

यद्यपि हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा की शुरूआत गार्सां द तासी से होती है, लेकिन काल-विभाजन और नामकरण का पहला प्रयास हमें जार्ज ग्रियर्सन के यहाँ मिलता है। जार्ज ग्रियर्सन ने 1888 में "द मार्डन वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ नादर्न हिन्दुस्तान" के नाम से हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। इसमें उन्होंने किसी एक काल की खास प्रवृत्ति से संबंधित रचनाओं और रचनाकारों का कालक्रमानुसार विवेचन किया है। ऐसी ही कोशिश मिश्रबंधु की रचना में देखने को मिलती है, लेकिन अब तक कालविभाजन का व्यवस्थित ढाँचा और वैज्ञानिक समझ विकसित नहीं हो पाई थी। हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को पहले कालक्रमानुसार चार कालखण्डों में विभाजित किया, काल सीमा के निर्धारण के लिए विक्रम-संवत को आधार बनाया और फिर युगीन प्रवृत्तियों के आधार पर कालखण्डों का नामकरण किया। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जिसके नाम इस प्रकार हैं- (I) वीरगाथाकाल (II) भक्तिकाल (III) रीतिकाल (IV) आधुनिक काल

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की तिथि रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् 1050 से संवत् 1375 तक मानी है।[1] और फिर संवत् 1050 से संवत्1375 के दौरान लिखी जाने वाली बारह रचनाओं का उल्लेख करते हैं। इनमें चार रचनाएँ अपभ्रंश की हैं और शेष देशभाषा काव्य की हैं जो निम्नलिखित हैं-

अपभ्रंश की रचनाएँ-

(1) शार्ङ्गधर की हम्मीर रासो

(2) नल्लसिंह की विजयपाल रासो

(3) विद्यापति की कीर्तिलता

(4) विद्यापति की कीर्तिपताका

देशभाषा काव्य की रचनाएँ-

(1) दलपति विजय की खुम्मान रासो

(2) नरपति नाल्ह की बीसलदेव रासो

(3) चंदबरदाई की पृथ्वीराज रासो

(4) जगनिक की परमाल रासो

(5) भट्ट केदार की जयचंद प्रकाश

(6) मधुकर कवि की जयमयंक जसचंद्रिका

(7) खुसरों की पहेलियाँ

(8) विद्यापति की पदावली[2]

इन रचनाओं को आधार बनाकर शुक्ल जी कहते हैं -" आदिकाल की दीर्घ परम्परा के बीच डेढ़ सौ वर्ष वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता- धर्म,नीति,शृंगार,वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती हैं। इस अनिर्दिष्ट लोक प्रवृत्ति के उपरांत जब मुसलमानों की चढ़ाइयों का प्रारंभ होता है तब से हम हिन्दी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बँधती हुई पाते हैं। राजाश्रित कवि उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं वर्णन भी

किया करते थे। यही प्रबंध परंपरा 'रासो' के नाम से पायी जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने 'वीरगाथाकाल' कहा है।"[3] इन्हीं रचनाओं के आधार पर शुक्ल जी ने आदिकाल को वीरगाथा काल नाम दिया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस अवहट्ट काल में तथा हिन्दी साहित्य के आदिकाल में (सन् 1000-1400 ई. तक) दो प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं –

1. जैन प्रभावापन्न परिनिष्ठित अपभ्रंश की रचनाएँ। इस श्रेणी में हेमचन्द के व्याकरण, मेरूतुंग के 'प्रबंध चिन्तामणि', राजशेखर के 'प्रबन्ध कोश' आदि में संग्रहीत दोहे आते हैं।

2. रासो ग्रन्थ – खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, जयचंद्र प्रकाश, जयमयंक जसचन्द्रिका, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो, कीर्तिलता और कीर्तिपताका को साहित्यिक पुस्तक माना है और खुम्माण रासो (आल्हा का मूल रूप) खुसरों की पहेलियाँ और विद्यापति पदावली को देशभाषा काव्य माना है।[4]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही। जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम, उल्लसित आनंद की ओर अधिक झुकाव था विलासित तथ्यावलि की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन काव्यों में कल्पना को उकसा देने के साधन मान लिए गए हैं। यही कारण है जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी चरित्र लिखा जाने लगा, तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक ये रचनाएँ काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं। फिर भी निजंधरी कथाओं से वे इस अर्थ में भिन्न थीं कि उनमें बाह्य तथ्यात्मक जगत् से कुछ-न-कुछ अवश्य रहता था।"[5]

रासो-साहित्य के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश रासो ग्रन्थों में प्रक्षिप्त अंशों की भरमार है। इसी कारण कुछ विद्वान इन्हें अप्रमाणिक रचना मानते हैं। तत्कालीन सन्दर्भ में यदि देखा

जाए तो विदित होता हैं कि उस समय राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त होता था और जिस चरित-नायक को लेकर रासो की रचना होती थी, उसके उत्तराधिकारी अपने वर्णन भी इन ग्रन्थों में जुड़वा देते थे। परन्तु सम्पूर्ण रासो ग्रन्थ ही अप्रामाणिक हों, ऐसा नहीं है। वास्तव में ये आदिकाल की रचनाएँ हैं तथा इनमें बाद की रचनाओं द्वारा प्रक्षेप कराया गया है। हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने वाले सभी विद्वानों ने इन्हें आदिकाल का साहित्य स्वीकार करके इनका वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है।

रासो साहित्य मूलतः सामंती व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है जिसका संबंध पश्चिमी हिन्दी-प्रदेश से है। इसे 'देशभाषा काव्य' नाम से भी जाना जाता है। इस साहित्य के रचनाकार राजाश्रित चारण और भाट थे। इन रचनाकारों का जुड़ाव सीधे राजा से होता था। ये चारण रचनाकार कला-रचना में कुशल होने के साथ-साथ योद्धा भी होते थे, जो युद्ध होने पर अपनी सेना की अगुवाई विरूदावली गा-गाकर किया करते थे और अपने राजाओं, आश्रयदाताओं, वीर पुरुषों तथा सैनिकों के वीरोचित युद्ध घटनाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते थे, उसके साथ-साथ यथार्थपरक स्थितियों एवं सन्दर्भों को भी बारीकी के साथ चित्रित करते थे। वीरोचित भावनाओं के वर्णन के लिए इन्होंने 'रासक या रासो' छंद का प्रयोग किया था, क्योंकि यह छंद इस भावना को सम्प्रेषित करने के लिए अनुकूल था। इसलिए इनके द्वारा रचित साहित्य को 'रासो साहित्य' भी कहा गया।

जिस काल में यह चारण रचनाकार हुए और जिसे शुक्ल जी ने वीरगाथा काल कहा है वह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विक्षिप्त काल था। पूरा देश कई छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। प्रत्येक राज्य का राजा अलग होता था। उनमें आये दिन युद्ध हुआ करते थे। सभी राजा एक-दूसरे से मेल-जोल रखने के बजाय आपस में लड़ते-भिड़ते रहते थे। राज्य-विस्तार करने के लिए उन्हें युद्ध करना जरूरी था। विदेशी सामंतों के आ जाने से युद्ध का वातावरण और गर्म हो गया। मुगलों ने देशी राजाओं में फूट डालो और राज करो की नीति का अनुसरण किया और एक दिन वे पूरे हिन्दू-जाति के शासक बन गए। जिस हिन्दू राजा ने उनका विरोध किया उससे उन्होंने युद्ध की ठान ली और जबरन उसे अपने अधीन कर लिया। राजनीतिक स्थिति के बिगड़ने से सामाजिक स्थिति में भी विखराव आया। प्रमुख हिन्दू जातियाँ उपजातियों में बढ़ती गईं। धार्मिक सम्प्रदाय भी उपसम्प्रदायों में

विभाजित हो गए। सभी जातियों और सम्प्रदायों में जो मेलजोल और सौहार्द पहले था, वह पूरी तरह वैमनस्य भाव में बदल गए। आये दिन एक जाति के लोग दूसरी जाति से और एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय से लड़न-भिड़ने लगे। इससे समाज में युद्धोन्माद बढ़ा। सांस्कृतिक मेलजोल और एकता के अभाव ने इसे और बढ़ने दिया। संघर्ष के इस वातावरण से देश और राज्य की आर्थिक स्थिति और दयनीय हो गयी। लोग भूखों मरने लगे। भूखे लोगों को मरने और मारने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं रह गया था। किन्तु ये लोग जो निम्न वर्ग के थे, लड़ नहीं पा रहे थे। इसीलिए उन्होंने लड़ने वाली जाति, विशेषकर राजूपत जाति की सेवा की और उन्हें लड़ने के लिए उकसाया। वे अपनी प्रजा को दुःखी नहीं देख सकते थे। इसीलिए उन्होंने युद्ध करना अपना नैतिक कर्त्तव्य मान लिया। इसीलिए एक धर्म और सम्प्रदाय के लोग दूसरे धर्म और सम्प्रदाय से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने में लगे हुए थे। इसके कारण भी संघर्ष बढ़ा। लड़ने वाली जाति के लिए सचमुच ही चैन से रहना असम्भव हो गया था क्योंकि सभी दिशाओं से आक्रमण होने की सम्भावना थी। अतः निरन्तर युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी वर्ग के लोग थे । उनका काम हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना-योजना का आविष्कार करना था। स्पष्ट है कि जिस समय कोई देश या राष्ट्र (जाति) युद्ध में व्यस्त रहता है उस समय रचनाकार का मुख्य कर्म हो जाता है उसे चेतना में स्थान देना। चारण-साहित्य या रासो साहित्य का प्रमुख स्वर वीरत्व होने का यही कारण था।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में रासो काव्य परम्परा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'रासो' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है इस पर विद्वानों के कई मत हमारे सामने आए हैं। रासो शब्द की उत्पत्ति किसी ने राजसूय से मानी है, तो किसी ने रसायन, रहस्य, राजयश, रासक, रास आदि शब्दों से मानी है। इतिहासकार गार्सा द तासी ने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति 'राजसूय', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसायण'[6] और डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने 'रहस्य'[7] से मानी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'रासक'[8] को एक छंद भी मानते हैं। ऐसा लगता है कि रासो का सम्बन्ध रास शब्द से है। रास रचाने कि क्रिया का वर्णन हमें श्रीमद्भागवत से ही मिलने लगता है। रास में नृत्य और गीत प्रधान होते हैं। रासो एक

परम्परागत काव्य रूप है। ऐसा काव्यरूप जिसका सम्बन्ध नृत्य और गीत से रहा है। इस परम्परा का विकास संस्कृत या अन्य किसी परम्परा से न होकर अपभ्रंश की परम्परा में हुआ है। आदिकालीन साहित्य में रासो ग्रन्थों की परम्परा दो रूपों में विकसित हुई है इन चरित्रों को काव्य में बाँधने के लिए ही इस शब्द का प्रयोग होता रहा है। वस्तुतः रासो काव्य मूलतः रासक छंद का समुच्चय है।इन धाराओं में अनेक रासो ग्रन्थ लिखे गए हैं। रासो ग्रन्थों की परम्परा जैन कवियों से मिलने लगती है। इस धारा के कवियों ने पर्याप्त मात्रा में रासो ग्रन्थों की रचना की। इसी के साथ-साथ जैनेतर कवियों के भी अनेक रासो ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। काव्य विषय की दृष्टि से रासो ग्रन्थों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

1. उपदेशमूलक रासो ग्रन्थ
2. शृंगारमूलक रासो ग्रन्थ
3. वीररसात्मक रासो ग्रन्थ

रासो ग्रन्थों की परम्परा के अध्ययन के लिए यही तीनों वर्ग सर्वाधिक उपयोगी हैं।

उपदेशमूलक रासो ग्रन्थ-

रासो काव्य में पर्याप्त मात्रा में ऐसे ग्रन्थों का सृजन हुआ है, जो धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। इन ग्रन्थों में धर्मोपदेश की प्रधानता है। ये ग्रन्थ अधिकांशत: जैन कवियों द्वारा लिखे गए हैं। इस परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ उपदेश रसायन रास,बुद्धिरास,जीवदयारास,चंदनबालारास आदि हैं।

शृंगारमूलक रासो ग्रन्थ

शृंगारमूलक रासो ग्रन्थों की श्रेणी में आने वाली रचनाएँ शृंगार रस से परिपूर्ण हैं। नायक और नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए विरह की स्थितियों का विस्तृत वर्णन करना ऐसी रचनाओं का मूल उद्देश्य है। कुछ महत्त्वपूर्ण शृंगारमूलक रासो ग्रन्थ संदेशरासक ,मुंजरास,बीसलदेव रासो आदि हैं।

1. वीररसात्मक रासो ग्रन्थ

रासो परम्परा के अन्तर्गत ऐसे भी रासो ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है जो वीरता, शौर्य और ओज से परिपूर्ण हैं। रासो काव्य में एक साथ वीरोचित और शृंगारोचित भावनाओं के वर्णन सुलभतापूर्वक मिल जाते हैं। रासो परम्परा के प्रतिनिधि ग्रन्थ इस प्रकार हैं –

(i) खुम्माण रासो

(ii) परमाल रासो

(iii) जयचन्दप्रकाश और जयमयंक जसचंद्रिका

(iv) हम्मीर रासो

(v) विजयपाल रासो

(vi) पृथ्वीराज रासो

1. खुमाण रासो – इस परम्परा की प्रारम्भिक कृतियों में 'खुमाण रासो' का स्थान सर्वोपरि है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख शिव सिंह सेंगर की कृति 'शिवसिंह सरोज' में मिलता है। इसके रचयिता दलपति विजय है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसको नवीं शताब्दी (सन् 812 ई.) की रचना मानते हैं।[9] इसमें राजस्थान के चित्तौड़-नरेश खुमाण (खुम्माण) द्वितीय के युद्धों का सजीव वर्णन किया गया है। किन्तु राजस्थान के वृत्त-संग्राहकों के अनुसार यह सत्रहवीं शताब्दी की रचना ठहरती है, क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी के चित्तौड़-नरेश राजसिंह तक के राजाओं के यशोगान का चित्रण मिलता हैं और इसी आधार पर इसको आदिकालीन रचनाओं के भीतर नहीं रखते हैं। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में "वृत्त संग्राहकों के पास इतिहास को समझने की पैनी दृष्टि थी; इसीलिए राजस्थान में रहते हुए भी वे आदिकाल की समाप्ति को भक्तिकाल और रीतिकाल के भण्डार में डालने का पुराग्रह करके यश अर्जित कर रहे हैं, जब कि वह सामग्री उन कालों की प्रवृत्तियों से किसी भी रूप में मेल नहीं खाती। इन लोगों ने रचनाकारों के नामों के संबंध में भी भ्रम पैदा किया है।"[10] यही कारण है कि डॉ. मोतीलाल मेनारिया जैसे प्रबुद्ध

इतिहासकार ने भी इस कृति के रचनाकार दलपति-विजय को जैन साधु माना है जो पूरी तरह से गलत है, क्योंकि रचना-शिल्प और वस्तु-विधान की दृष्टि से यह काव्य किसी जैन साधु द्वारा विरचित नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो अवश्य ही इस रचना की अन्तर्वस्तु में जैन धर्म का प्रसार मिलता, जो कि नहीं है। इस स्थिति में इसका रचनाकाल नवीं शताब्दी मान लेने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई पड़ती।

इस ग्रन्थ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति पूना-संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें कुल पाँच हजार छंद हैं। इसमें समकालीन राजाओं के आपसी विवादों के बाद हुए एकता के साथ-साथ अब्बासिया वंश अलमॉमू खलीफा और खुमाण के साथ हुए युद्ध का चित्रण मिलता है। इस कृति का प्रमुख सरोकार राजा खुमाण का चरित्रांकन करना है। उनके प्रेम को दर्शाने के लिए ही कृतिकार ने नायिका भेद और षट्ऋतुवर्णन का उल्लेख भी किया जो रमणीय है। वीर और शृंगार रस के साथ इसमें दोहा, सवैया और कवित्त छंदों का उपयोग किया गया है। इसकी भाषा राजस्थानी हिन्दी है। जैसे –

"पिउ चीतोड़ न आवियो, सावण पहिली तीज।

वाट जोय रति विरहिणी, षिण षिण आवें षीज।।

संदेसो पिउ साहिबा, पाछो फिरिय न देह।

पंछी घाल्यो पींजरे, छूटण रा संदेस।।"[11]

2. परमाल रासो – इस परम्परा की अगली कृति के रूप में 'परमाल रासो' का नाम लिया जाता है। इसे 'आल्हखण्ड' भी कहते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'बैलेड' तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे वीरगाथा काव्य कहा है।[12] अभी तक इसकी प्रामाणिक प्रति उपलब्ध नहीं हुई है जो 'आल्हखण्ड' प्राप्त है वह बहुत बाद में लिपिबद्ध किया गया है। सर्वप्रथम सन् 1865 ई. में चार्ल्स इलियट ने जिस 'आल्हखण्ड' का प्रकाशन कराया था, वह पूरी तरह से मौखिक परंपरा पर आधारित है। इसी प्रति को आधार बनाकर डां. श्यामसुंदर दास ने 'परमाल रासो' का पाठ निर्धारण किया और नागरी प्रचारणी

सभा, काशी से प्रकाशित कराया। पाठ-निर्धारण के बाद भी यह कृति प्रामाणिक नहीं बन सकी। यह 13वीं शताब्दी के प्रारंभ की रचना है। इसके रचयिता जगनिक हैं,जो महोबा के नरेश परमर्दिदेव के आश्रित थे। रचनाकार ने इस काव्य में महोबा के दो देश प्रसिद्ध वीरों आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र को यथार्थ ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। इसमें आल्हा छंद (वीरछंद) का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा बैसवाड़ी है। यह छंद गायन शैली को प्रस्तुत करता है।

इसका प्रचार वैसे सारे उत्तर भारत में है पर बैसवाड़ा इसका प्रमुख केन्द्र है। वहाँ इसके गाने वाले अधिक मिलते हैं। बुन्देलखण्ड में, विशेष रूप में महोबा के निकट क्षेत्रों में इसका अधिक प्रचलन मिलता है। गीत-योजना और छंद विधान की दृष्टि से यह एक वीरगीतात्मक काव्य है-

"बारस बरिस लै कुकूर जिएँ, औ तेरह लै जिएँ सियार।

बरिस अठारह क्षत्री जिएं, आगे जीवन को धिक्कार।।"[12]

3. जयचन्दप्रकाश और जयमयंक जस-चन्द्रिका – रासो काव्य परम्परा में 'जयचन्दप्रकाश' और 'जयमयंक जस-चन्द्रिका' का उल्लेख मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'शिवसिंह सरोज' के आधार पर इन्हें क्रमश: भट्टकेदार तथा मधुरकवि की कृति माना है। ये रचनाएँ सन् 1167 ई. से सन् 1186 ई. के मध्य लिखी गई थी। ये कवि कन्नौज के राजा जयचन्द्र के समकालीन थे और उनके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। कुछ इतिहासकार ने भट्ट केदार को शहाबुद्दीन गोरी का दरबारी कवि माना है जो कि गलत है। सोचने की बात है कि यदि ये शहाबुद्दीन गोरी के दरबारी कवि होते तो उनका यशोगान करते, पर उन्होंने ऐसा न करके, जयचन्द का यशोगान किया है। 'जयमयंकजसचन्द्रिका' के रचनाकार मधुकर ने भी इस ग्रन्थ में जयचन्द के प्रताप और पराक्रम का विस्तृत वर्णन किया है। इन कृतियों तथा हस्तलिखित प्रतियों की अनुपलब्धता के कारण इनका अस्तित्व खतरे में है। जो भी हो, ऐतिहासिक संदर्भों में इन कवियों का अस्तित्व सुरक्षित है, भले ही ये कृतियां, 'नोटिसमात्र' ही क्यों न हों।

4. हम्मीर रासो - इस परम्परा की चौथी कृति का नाम 'हम्मीर रासो' है। आज तक स्वतंत्र रुप में इस रचना की खोज नहीं हो पायी है। हाँ, 'प्राकृत पैंगलम्' में हम्मीर से संबंधित आठ छंद अवश्य उपलब्ध हैं। इन्हीं आठ छंदों के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसके अस्तित्व की कल्पना की है। प्रचलित धारणा के अनुसार इस कृति के रचयिता शाड़र्गधर माने जाते हैं पं. राहुल सांकृत्यायन ने 'प्राकृत पैंगलम्' के आठ छंदों (हम्मीर से संबंधित) से रचयिता के रुप में 'जज्जल' का नामोल्लेख किया है - उचित भी है। सचमुच 'प्राकृतपैंगलम्' के दो छंदों में इस रचनाकार का नाम आया है –

1. "हम्मीर कज्जु जज्जल भणह कोणाहण मुँह मह जलउ।

सुणतान सीस करवाण दह तेज्जि कबलेर दीअचलउ।"[13]

2. "ढोण्णा मारिअ ढिण्णी मह मुच्छिम मेच्छ सरीर।

पुर जज्जला मंतिवार चलिउ वीर हम्मीर।"[14]

दूसरे की अंतिम पंक्ति का अर्थ यह है 'जज्जल और मंत्रिवर आगे करके वीर हम्मीर चले' न कि 'आगे मंत्रिवर जज्जल को करके वीर हम्मीर चले' (जैसा कि आचार्य शुक्ल ने किया है)। उस काल का कवि तलवार का भी धनी होता था जो सेना के आगे-आगे चलता था जैसे चन्दबरदयी। उसके बाद मंत्री और राजा रहते थे। डॉ. माताप्रसाद गुप्त जैसे विद्वान इन पंक्तियों के अर्थ को न समझ पाने के कारण ही उज्जल को मंत्री मान लिया है। हम्मीरदेव सन् 1300 ई. में अलाउद्दीन की चढ़ाई में मारे गए थे। इसीलिए इस कृति का रचनाकाल 13वीं शती ही मानना चाहिए। इसमें हम्मीर देव और अलाउद्दीन के युद्ध का ही चित्रण किया गया है।

5. विजयपाल रासो – मिश्रबन्धुओं ने इस परम्परा की एक कृति 'विजयपाल रासो' का उल्लेख किया है जिसके रचयिता नल्लसिंह हैं। इस कृति का नायक विजयपाल सम्भवतः विश्वामित्र गोत्रीय गुहिलवंशीय

राजा विजयपाल से भिन्न है जिसने 'काई' नामक वीर योद्धा को पराजित किया था। इस राजा के प्रपौत्र विजय सिंह का एक हिन्दी शिलालेख दमोह (मध्य प्रदेश) में प्राप्त हुआ है; ने इस रचना में रचनाकार ने राजा विजयपाल सिंह और बंगराजा के बीच हुए युद्धों को सजीव रूप में चित्रित किया है। इसका रचनाकाल सन् 1298 ई. है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी नाम की दूसरी कृति का उल्लेख भी किया है जिसके रचनाकार मल्लदेव है। शिल्प-विधान की दृष्टि से यह आदिकाल के बाद की रचना ठहरती है।

6. पृथ्वीराज रासो – इस परम्परा की अन्तिम कृति 'पृथ्वीराज रासो' है। इसके रचयिता चन्दरबरदाई हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में – "ये हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका पृथ्वीराज रासो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। चंद दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज के सामंत और राजकवि प्रसिद्ध हैं। ये महाराज पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं, उनके सखा और सामंत थे; तथा षड् भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि अनेक विधाओं में पारंगत थे।"[15] इनका जन्म सन् 1168 में हुआ था। जनश्रुति के अनुसार जिस समय पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गोरी बन्दी बनाकर ले जा रहा था, उस समय चन्द भी महाराज के साथ गया था। उसी समय वह अपने पुत्र जल्ल (जल्हण) को 'पृथ्वीराज रासो' को सौंप गया था। 'पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज।' ऐसा विश्वास है कि जल्हण ने चन्द के अपूर्ण महाकाव्य को पूरा किया था।

अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के चार संस्करण ही उपलब्ध हैं। प्रथम संस्करण जिसका कलेवर विस्तृत है, काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित है और जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। यह प्रति 17वीं शती के आसपास की है। तीसरा संस्कार लघु है जिसमें 3500 छंद ही संकलित हैं। इसमें केवल 19 समय हैं। इसकी प्रति बीकानेर (राजस्थान) में सुरक्षित है। चौथे संस्करण के 'पृथ्वीराज रासो' में केवल 1300 छंद है जिसका प्रकाशन 'राजस्थान भारती' से हुआ है। यह सबसे छोटा संग्रह है।

'पृथ्वीराज रासो' काव्य-रूप की दृष्टि से एक ऐसा बेजोड़ महाकाव्य है जिसमें मानव-जीवन के दोनों गरिमामय और उदात्त पक्षों तथा वीर और शृंगार-भावनाओं का प्रभावपूर्ण रूप एक साथ वर्णित दिखलाई देता है। इसका नायक पृथ्वीराज अमित पौरुष और शौर्य के ही नहीं, उस युग के गौरवशाली परम्परा और संस्कृति के प्रतीक हैं। यह कृति भारतीय इतिहास-गाथा की कड़ी है जिसमें उस युग के सामंती-जीवन के सम्पूर्ण परिवेश और उसके कर्म को यथार्थ संदर्भों में उजागर किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से इसमें वस्तु-वर्णन, भाव-व्यंजना, छंद प्रयोग और अलंकार-विधान का अनूठा प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा डिंगल और पिंगल दोनों है। युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्‌भुत सर्जना हैं, सौन्दर्य, प्रेम-विलास के रसीले चित्र उतारे गए हैं – परन्तु नैतिक मर्यादाओं का कहीं उल्लंघन नहीं हुआ है। वस्तु, संवेदन, रंग और ध्वनियों के सम्मिलित प्रभाव के उदाहरण सहज ही मिल जाते हैं –

"वज्जिय घोर निसान रान चौहान चहूँ दिसि।

सकल सूर सामंत समर बल जंत्र मंत्र तिसि।

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनहु वीर नट।

कढ़त तेग मन बेग लगत मनहु बीजु झट्ट घट्ट।"[16]

रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ

रासो साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं –

(क) वस्तुपरक और कथ्यपरक प्रवृत्तियाँ :

1. वस्तु-कथ्य-वर्णन में अतिश्योक्ति वर्णन की अधिकता – चारण साहित्य के रचयिता कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा को श्रेष्ठ वीर, पराक्रमी सम्राट, दानवीर, दृढ़ प्रतिज्ञ, शरणागत-रक्षक और अनुपम

सौन्दर्यशाली सिद्ध कर उसका अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। राजाओं का चरित्रांकन करना ही उस काल के रचनाकारों का मुख्य सरोकार था। रचनाकार रात-दिन शूर-वीर राजाओं के साथ रहते थे। युद्ध के समय भी वह राजा का साथ नहीं छोड़ते थे। वह युद्ध के समय सेना का नेतृत्व करता था और अपनी ओजस्वी कविताओं से सम्पूर्ण वातावरण और परिवेश को वीरोचित भावना से आपूरित करता था। इस उत्साह संघर्ष और युद्ध के बीच भी वह राजाओं के यशोगान को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित करना नहीं भूलता था –

"बाणां बगतर लगें तडतड़े। मेघ बुंद उदधी जिम पडें।।

षांन निबाब कुलट्टा षाय। षुंदालिम करे षुदाय।।"[17]

अर्थात् जिरह बख्तरों पर तड़ातड़ बाण ऐसे टकराते थे जैसे सागर या सरोवर में बादलों से बरसती जलधाराएँ गिरती हैं। बादशाही सामंत ख़ान, नवाब आदि सिर के बल औंधे गिरते थे और बादशाह खुदा को याद करता था।

2. सामंत और सामंती समाज तथा उसकी संस्कृति का यथार्थ चित्रण – चारण साहित्य प्रमुखतः सामंतों का साहित्य है। इस साहित्य में सामंती सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के जिन सन्दर्भों को वर्णित किया गया है, वे अतिश्योक्तिपूर्ण अवश्य हैं पर उसमें यथार्थता भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता। सामंतों की उपभोक्ता संस्कृति के अनेक चित्र इसमें सरलता से खोजे जा सकते है। विलासिता की प्रत्येक वस्तु के प्रति उनका गहरा लगाव है। कंचन और कामिनी के प्रति जितने वे जागरूक हैं उतने निम्न और मध्यवर्ग के प्रति नहीं, किन्तु जब राष्ट्रीयता और जातीय अस्मिता की रक्षा का प्रश्न सामने आता था तो जो वर्ग शोषण का शिकार बना हुआ था वही सामंतों के साथ हो लेता था। उनके इस त्याग और सहयोग की भावना का महत्त्व सामंतों की दृष्टि में नगण्य था। सामाजिक कुरीतियों के अन्तर्गत बहु-विवाह, अनमेल-विवाह, गंधर्व विवाह, सती-प्रथा जैसी अनेक रीति-रिवाजों का प्रचलन था। 'पृथ्वीराज रासो' में इन सामाजिक कुरीतियों का सविस्तार

वर्णन मिलता है। धार्मिक बाह्यचारों तथा आडम्बरों के रूप में तंत्र, योगमाया, जादू-टोटका का भी प्रचलन अधिक था। उस काल में धर्म के नाम पर हिन्दू-मुसलमानों में युद्ध होता रहता था –

"दोउ दीन दीन कढ़ी बंकि अस्सी।

किधौं मेघ में बीज कोटिन्निकस्सीं।।

किये सिप्परं कोर ता सेल अग्गो।

किधौं बद्दर कोर नागिन्न नग्गी।"[18]

2. **ऐतिहासिकता, राष्ट्रीयता का अभाव और कल्पनात्मकता का बाहुल्य** – रासो साहित्य में मूल रूप में चरित्र काव्य ही मिलते हैं उनमें राष्ट्रीय चेतना का अभाव मिलता है, क्योंकि देश छोटे-छोटे अनेक राज्यों, प्रान्तों में विभाजित था। सामंत इन्हीं राज्यों के स्वामी थे। वे आये दिन आपस में भी एक दूसरे से लड़ते रहते थे। बाहरी जातियों के आक्रमण से रही-सही राष्ट्रीय चेतना भी ध्वस्त हो गई। इस साहित्य में जिन इतिहास-प्रसिद्ध चरित्र-नायकों को स्थान मिला है, उनके चरित्र-वर्णन इतिहास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते है। इनके रचनाकारों द्वारा दिए गए संवत् और तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं खातीं। इनसे संबद्ध रचनाओं में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहुल्य मिलता है। अतिरंजनापूर्ण शैली अपनायी गई है। जैसे –

"त्रिजड़ हत्थ तरवार थीं, षरो विरूद षुम्माण।

पाठ भणें सारी प्रथी, जग जस चढ्यो प्रमाण।।"[19]

अर्थात् तलवार के चमत्कार दिखाने के कारण खुम्माण को विशुद्ध 'त्रिजड़ हत्थ' (खड्गधर) का विरूद प्राप्त था। सारा संसार उसके नाम की रट लगाता है। उसको संसार में प्रामाणिक यश की प्राति हुई।

4. युद्धों का जीवन्त वर्णन और सामान्य जन-जीवन के विषय का अभाव – रासो काव्यों में सामंती परिवेश और जीवन को जिन विभिन्न स्तरों पर चित्रित किया गया है उन स्तरों पर सामान्य जन-जीवन को नहीं उकेरा गया है। किसी भी दरबारी रचनाकार सामान्य जन-जीवन को काव्य में कहीं स्थान नहीं दिया है। अतः किसी दरबारी रचनाकार से उस समय के जन-जीवन की विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखना गलत है। आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं भी युद्धस्थल में जाते थे और युद्ध के निकट दृश्यों को अपनी खुली पलकों से अवलोकित करते थे। वह समय आन्तरिक द्वन्द्वों और बाहरी आक्रमणों का था, अतः अपने आश्रयदाताओं को युद्ध के लिए उत्तेजित करना उस काल के रचनाकार का प्रमुख सरोकार बन गया था। जैसे –

"बज्जिय घोर निसांन रान चौहान चहूँ दिसि।

सकल सूर सामंत समर बल जंत्र मंत्र तिसी।

उठ्ठि राज प्रथिराज वाग लग्ग मनहु वीर नट।

कढ़त तेग मन बेंग लगत मनहु बीजु घट्ट।"[20]

5. संदिग्ध और अर्द्धप्रामाणिक रचनाओं की बहुलता – चारण साहित्य के अन्तर्गत आने वाली अधिकांशतः रचनाएँ संदिग्ध और अर्द्धप्रामाणिक हैं। 'जयचन्दप्रकाश', 'जयमयंकजसचन्द्रिका', 'हम्मीर रासो' आदि रचनाएँ असंदिग्ध हैं। 'पृथ्वीराज रासो' को भी अभी तक एक प्रामाणिक रचना के रूप में प्रतिष्ठा नहीं मिली है। 'खुमाण रासो' की जो प्रति उपलब्ध है उसका रूप बदला हुआ है। विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से इन रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है कि इनमें कई शताब्दियों तक परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं जिसके कारण इनका मूल रूप दब-सा गया है।

6. नारी रूप का सौन्दर्यांकन – चारण-साहित्य में नारी एक प्रेरणा स्रोत के रूप में वर्णित है। एक ओर नारी जहाँ युद्धों का कारण बनी हुई है – वही दूसरी ओर विलासिता का कारण भी। नारी का रूप ही वह अस्त्र है जिसके द्वारा वह पुरुषों पर वार करती है और उसे अपना बना लेती है। यह अस्त्र सौन्दर्य के आकर्षण का है। ऐसी नारियाँ कमनीय और लुभावनी होती थीं। युद्ध या संघर्ष इन्हीं की प्राप्ति के लिए होता था। राजकुमारी रतिसुंदरी बाहर से जितनी सुंदर थी उतनी ही भीतर से। रूप और अपरूप का ऐसा अनूठा संयोग कम नारियों में दिखलाई पड़ता है। उसके दोनों पाँव चंपा के फूल हैं और पिंडुलियाँ चक्रमर्द(चकवक,पुँवाड़) के पुष्प हैं। उसके जंघ युगल जूही के फूल है। उसकी देह फुलवाड़ी के समान विकसित है। उसके कान केतकी के पुष्प है। उसके दोनों हाथ कमल के पुष्प हैं। स्वयं श्वेत कुंज के समान विकसित है। उसका हृदय केवड़े का पुष्प है, मन गुलाब का फूल है और उसकी बोली कोयल के समान रसीली है।कविराज दलपति है कि वह अपने स्वामी के समीप शोभित है। उसके पतिदेव भँवरा बने हुए हैं और वह पुष्पों से पुष्पायित फुलवारी के समान है-

"चरण चंपे को फूल, पिंडुरी पुंआर फूल,

जंघ जूहिया को फूल, फूली वेस वार *सी।*

कर्ण केतकी को फूल, कुच करणा को फूल,

कर कमले को फूल, फूली उजदार सी।।

(दसन दारू को फूल, बोलें कोकिला रसी)

कहें(दल्ल) कविराय, साम के समीप सोहें,

भर्तार भए भ्रमर, फूली फुल वार सी।।'[21]

नारियों का नख शिख-वर्णन इस दृष्टि से अनुपम है।

7. प्रकृति के बहुआयामी स्वरूप का चित्रण – रासो साहित्य में प्रकृति के नानाविध स्वरूप के दिग्दर्शन होते हैं। उनमें प्रमुख ये हैं – आलम्बन, उद्दीपन, परिगणन, अलंकारिक, मानवीकरण और बिम्बग्राही। जहाँ प्रकृति को आलम्बन और परिगणन रूप में प्रस्तुत किया गया है वहाँ यथार्थता की प्रधानता है। शेष प्रकृति-प्रसंगों में काल्पनिकता की अधिकता है। इनमें ऋतुओं के जो चित्र उकेरे गए हैं वे कहीं-कहीं विरह के माध्यम बने हुए हैं। भावप्रणता और प्राकृतिक सौन्दर्य के स्तर पर प्रकृति का उद्दीपन रूप अनुपम है। इन वर्णनों में रचनाकार के ऋतु-विषयक अनुभव, निरीक्षण और वर्णन-कौशल का परिचय मिलता है। कहीं-कहीं प्रकृति को बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। बसंत ऋतु का चित्रण करते हुए चन्दबरदाई लिखते हैं –

"मवरि अब फुल्लिंग, कदंब रयनी दिघ दींस।

भंवर भाव भुल्ले, भ्रमंत मकरंदव सींस।।

बहत बात उज्जलति, मोर अति विरह अगति किय।

कुलकहंत कल कंठ, पत्र राषस रति अग्गिय।।"[22]

(ख) भावपरक प्रवृत्तियाँ :

1. वीर और श्रृंगार रस-निरूपण – चारण-साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं – प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। दोनों प्रकार की रचनाओं में शृंगार या वीर रस की उद्भावना अवश्य हुई है। प्रबंध काव्यों में एक साथ दोनों रसों का चित्रण मिलता है। प्रबंध काव्यों में वैसे खोजने पर सभी रसों का वर्णन सहज रूप में मिल जाता है। चारणों ने अपनी रचनाओं में एक ओर युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्‌भुत सृष्टि की है तो दूसरी ओर रूप-सौन्दर्य, वस्तु-सौन्दर्य और प्रेम से परिपूर्ण सरस चित्र भी उतारे हैं। नारी दोनों रसों के केन्द्र में है। नारी-प्राप्ति के लिए ही युद्ध होता है और उसकी प्राप्ति के बाद वातावरण विलासपूर्ण हो जाता है। ' खुम्माण रासो' एक ऐसा अनूठा ग्रन्थ है जिसमें वीर और

श्रृंगार रसों की नियोजना के लिए ही अन्य रसों को भी समाहित किया गया है। शृंगार रस का यह उदाहरण दर्शनीय है –

"पिउ़ड़ो नें मिलिया पदमणी। पूगी हूंस सहू बिहुं तणी।।

सयणी नें साहिब ससनेह। मिरयो विरह पय ठूठा मेह।।'[22]

इन कवियों की रचनाओं का प्रमुख सरोकार सामंतों के विलासपूर्ण जीवन तथा उनकी वीरता और पराक्रम को वर्णित करना था। इन रचनाओं में वीर और शृंगार रस की प्रमुखता का यही कारण था।

2. विरहानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति – इस काल के सामंतों की यह विशेषता थी कि वे एक साथ कई स्त्रियों से प्रेम करते थे। उनके जीवन में एक-एक करके नई स्त्रियों का आगमन होता था। नई स्त्री के आ जाने पर पूर्वानुरागिनी के प्रति सामंतों की प्रीति कम हो जाती थी जिससे वे निरंतर दुःखी रहती थीं। कभी-कभी विरहानुभूति का कारण प्रवास और मान भी बन जाता था। 'वीसलदेव रासो' एक विरह प्रधान काव्य है – जिसमें मान और प्रवास से ही विरह का उपजना दिखाया गया है। ये विरह वर्णन अतिश्योक्तिपूर्ण अवश्य हैं पर उनमें स्त्रियों की जिस स्थिति को चित्रित किया गया है, उसमें यथार्थता की झलक स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। इस काल में स्त्री की कोई सामाजिक स्थिति नहीं थी। वह मात्र विलासिता की वस्तु थी। उसका समाज में कोई स्वतंत्र अस्तित्व न था। ' खुम्माण रासो' में संयोगिता के विरह-वर्णन का यह दृश्य अनूठा है –

"सज्जन सपनें आविया, में गल घाली सोइ।

डरपत नयण न षोलिया, जाण विछोहा होय।।'[23]

अर्थात् मेरे प्रियतम मेरे सपने में आए, उनके कंठ में बांहें डालकर मैं सो गई। मैंने इस चर से अपनी आंखें नहीं खोली कि कहीं उनसे वियोग न हो जाए।

(ग) शिल्पगत प्रवृत्तियाँ :

1. काव्य-रूप – रासो साहित्य में सामंतों के चरित्रों का उद्घाटित करने के लिए जिस अतिरंजनापूर्ण शैली को अपनाया गया था, वे प्रबंध काव्य के अधिक निकट थीं। वीर और पराक्रम की साहसपूर्ण कारनामों और करतूतों को मुक्तक काव्य की अपेक्षा प्रबंध काव्य में सफलतापूर्वक वर्णित करने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। इसलिए इन चरित्र प्रधान काव्यों में प्रबंधात्मक शैली को ग्रहण किया गया है। रासो ग्रन्थ प्रबंधकाव्य के अन्तर्गत आते हैं।

2. अलंकार-योजना – अलंकारों के प्रयोग से काव्यवस्तु की शोभा बढ़ जाती है। चारणों की कविता में अलंकारों का प्रयोग इसी आशय से किया गया है। शब्दालंकार के रूप में इन काव्यों में अनुप्रास, यमक, श्लेष और वक्रोक्ति के अच्छे प्रयोग दिखाई पड़ जाते हैं। यमक अलंकार का एक नमूना यहाँ प्रस्तुत है –

"अंग सुलच्छिन हेम तन, नग धरि सुदरि सीस।

गौरी ग्रहि गोरी गयो, बिना जुद्ध बुझि रीस।"[24]

इन रासो-ग्रन्थ में अर्थालंकार के सफल प्रयोग भी किए गए हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, स्वभावोक्ति, दीपक, भ्रम, अतिशयोक्ति, प्रतीप, दृष्टान्त जैसे अनेक अलंकारों का प्रयोग काव्य-परम्परा को ध्यान में रखकर किया गया है। प्रचलित उपमानों के साथ कुछ नवीन उपमानों के प्रयोग से वस्तु, भाव और शिल्प में रोचकता और प्रभाव बढ़ा है। जैसे –

"जनु छैलनि कुलटा मिलै।

बहुत दिवस रस षंक।।"[25]

उत्प्रेक्षाओं और रूपकातिशयोक्तियों की रासों में भरमार है। इसके अतिरिक्त इन ग्रन्थों में उदाहरण, दृष्टांत, दीपक, संदेह, स्वाभावोक्ति आदि के सुंदर नमूने देखने को मिल जाते हैं।

3. छंद-विधान – रासों में छंदों के विविध प्रयोग मिलते हैं जिनमें कुछ ऐसे हैं जिनके रूप का पता नहीं है। रासों में बहुधा बदलने वाले छंद उसकी कथात्मक और संवेदानात्मक गति में बाधा नहीं डालते, यही उसकी विशेषता है। इन छंदों के प्रयोग से रचनाकार की प्रतिभा और दूरदर्शिता का पता भी चलता है। मात्रा और वृत्त से संबंधित इन छंदों का प्रयोग रासो में अधिक हुआ है – गाहा, आर्मा, दूहा, पद्धरि, अरिल्ल, चौपाई, मुरिल्ल, काव्य, रासा, रोला, मालती, दुर्मिल, चन्द्रायना, सोरठा, करषा, लीलावती, त्रिभंगी, कवित्त, साटक, दण्डक, छप्पय, त्रोटम, मलया, रसमाला, नाराच आदि। अकेले 'पृथ्वीराज रासो' में अड़सठ छंदों का प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस काल के रचनाकारों को छंदों का विशिष्ट ज्ञान था। छंदों के सर्वाधिक प्रयोग करने के कारण ही 'चन्दरबरदाई' को 'छप्पय का राजा' कहा गया है।

4. शिल्प-विधान – शिल्प एक गतिशील प्रक्रिया है जो रचना की सृजनात्मकता को सार्थक बनाती है। शिल्प का रचाव बहुत कुछ भाषा के रचाव पर निर्भर करता है। भाषा की एक खास सरंचना होती है, जो अपने एक निश्चित सोपानक्रम में विकसित होता है।

रचनाकार लोक-जीवन से उन सार्थक शब्दों का चुनाव करता है जो उनके वस्तुलोक और भाव लोक को समृद्ध करता है। रचना की सम्प्रेषणीयताके आधार यही शब्द हैं। चारणों ने रचना के स्तर पर जिन भाषाओं का प्रयोग किया है, वे डिंगल और पिंगल भाषाएँ हैं। ये भाषाएँ लोकजीवन से जुड़ी हुई भाषाएँ हैं। लोक से जुड़े हुए शब्दों, लोकोक्तियों और मुहावरों से भाषा सजीव और जीवंत हो गई है।

रासो साहित्य का अपना एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्त्व है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह साहित्य उन सामंतो के शोषण-कर्म को उजागर करता है जिसका संबंध जर, जोरू और जमीन से था। उनके द्वारा जो भी युद्ध किए जाते रहे उनका संबंध केवल उन्हीं से था। सामान्य जनता से इसका दूर तक नाता नहीं था। युद्ध के जीत के रूप में हस्तगत नारी केवल सामंतों की भोग्या बन कर रही थी। सामान्य जनता के हित-चिन्तन जैसे सरोकारों से उसका कोई संबंध नहीं था। राजनीति के

नाम पर जो भी हथकण्डे अपनाए जाते थे – उससे मात्र सामंतो का हित-चिन्तन होता था। युद्ध इस काल में सामंतों की प्रसिद्धी और गौरव का कारण बनी हुई थी। मानव-समाज और सर्वहारा वर्ग के बारे में सोचने के लिए उनके पास अवकाश नहीं था। युद्ध जाति विशेष का पेशा बन गया था। इन सामंतों के दो ही प्रमुख कार्य थे – युद्ध करना और युद्ध में प्राप्त की गई वस्तुओं का उपभोग करना। नारियों को भोग्या वस्तु बनाकर इन सामन्तों ने अपने सामाजिक स्तर को और भी गिरा दिया था। बाहरी आक्रमणों ने देश, जाति और समाज की स्थिति को अवनति के कगार पर पहुँचा दिया। निरंतर युद्ध के अनुगूँज से देश और जाति की सांस्कृतिक विकास की गति थम-सी गई थी। सांस्कृतिक विरासत के रख-रखाव की चाह सामंतों में न थी। युद्ध और विलासिता ही उनके जीवन का मुख्य सरोकार बन गया था। साहित्यिक संरक्षण के रूप में उन्होंने जिन चारण-रचनाकारों को प्रश्रय दे रखा खा उनका मुख्य कार्य युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना-योजना का आविष्कार था। उन्होंने सामान्य जनता को रचना में स्थान नहीं दिया। सामंत ही उनके लिए सब कुछ थे। रचनाकार की सारी सृजनात्मक ऊर्जा लगी हुई थी। सामाजिक और सांस्कृतिक कर्म के विविध पहलुओं की ओर उनकी दृष्टि नहीं जा सकी। सामान्य-जन की उपस्थिति उनकी रचनाओं में नहीं के बराबर थी। देश और राज्य की भीतरी लड़ाई और बाहरी आक्रमणों से सामान्य-जन की आर्थिक स्थिति लड़खड़ा उठी। ऐसी स्थिति में जो रचनाएँ सामने आई उनमें केवल सामंतों के गुणगान की प्रमुखता रही।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अनुपम प्रकाशन अशोक राजपथ पटना,संस्करण 2009,पृ. सं. 20

2. वही ,पृ.सं.(II)

3. वही,पृ. सं.(1)

4. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 37

5. वही, पृ. सं. 49

6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल,पृ.सं 20

7. डिंगल में वीररस, मोतीलाल मेनारिया,हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,द्वितीय संस्करण, पृ. सं. 20

8. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी , पृ. सं. 53

9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,पृ. सं.20

10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक- डॉ. नगेन्द्र,डॉ. हरदयाल,मयूर पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण 1973,पृ.सं.53

11. खुम्माण रासो, संपादक ब्रजमोहन जावलिया,महाराणा प्रताप स्मारक समिति,उदयपुर,संस्करण-अप्रैल 2001,पृ.सं.281

12. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,पृ. सं.24

13. वही,पृ.सं.33

14. राजस्थान की हिन्दी कविता, प्रकाश आतुर,पृ.सं.22

15. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,पृ. सं.24

16. पृथ्वीराज रासो,संपादक मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या,पृ. सं.102

17. खुम्माण रासो, संपादक ब्रजमोहन जावलिया,पृ.सं. 463

18. पृथ्वीराज रासो,संपादक मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या,पृ.सं.44.58

19. खुम्माण रासो, संपादक ब्रजमोहन जावलिया,पृ. सं.120

20. पृथ्वीराज रासो,संपादक मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या,पृ.सं.27.58

21. खुम्माण रासो, संपादक ब्रजमोहन जावलिया,पृ. सं212

22. वही,पृ. सं366

23. वही,पृ.सं.387

24. पृथ्वीराज रासो,संपादक मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या,पृ.सं.63.644

25. वही,पृ.सं.11.32

अध्याय - 2

खुम्माण रासो की कथावस्तु

2.1 खुम्माण रासो से संबंधित सूचनाएँ-

खुम्माण रासो से संबंधित सभी जानकारियाँ कर्नल टाड ने दी। उनका मानना हैं कि यह ग्रन्थ 9वीं शती में बना और महाराणा प्रताप सिंह के समय में पुन: संशोधित हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, शिवसिंह सरोज, मिश्रबंधु, जार्ज ग्रियसर्न आदि इतिहास लेखकों में इस ग्रन्थ को लेकर ऊहापोह की स्थिति बनी रही। इसके रचयिता के नाम, जाति, स्थान आदि के विषय में अनेक मान्यताएँ स्थापित की गईं। खुम्माण रासो के रचयिता और रचनाकाल के विषय में शोधपूर्ण प्रकाश डालने का श्रेय श्री अगरचंद नाहटा, डा. मोतीलाल मेनारिया और डा. कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय को जाता है, जिन्होंने खुम्माण रासो की प्रति को देखा और रचनाकाल के विषय में अपनी मान्यताएँ स्थापित कीं।

श्री अगरचंद नाहटा ने भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना में सुरक्षित रखी खुम्माण रासो की प्रति की परीक्षा करके यह निणर्य किया है कि *'खुम्माण रासो'* के रचयिता का नाम 'दौलत विजय' है। इस हस्तलेख में आठ खण्ड हैं। उसके तीसरे और आठवें खण्ड की पुष्पिकाएँ छोड़कर शेष सभी खण्डों की पुष्पिकाओं में दौलत विजय नाम आया है। खुम्माण रासो में महाराणा राजसिंह द्वारा राजसमुद्र बनाने की तैयारी तक का वर्णन है जो घटना संख्या (1717-18 वि. संवत्) की है।'[1] नाहटा जी द्वारा उद्धृत विभिन्न पुष्पिकाओं के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि कवि का गृहस्थाश्रम का नाम दलपत था, शांति विजय द्वारा दीक्षित होने पर दलपत दौलत विजय हो गए। श्री मोहनलाल दुभीचंद देसाई के अनुसार भी दौलत-विजय के गुरू का नाम शांति-विजय था।'[2] शांति विजय का रचनाकाल उन्हीं के ग्रन्थों से सं. 1733-56 वि. प्रामाणित है।

खुम्माण रासो के पंचम खण्ड के प्रतिलिपिकार हिम्मत-विजय के शिष्य हेत-विजय थे। हेत विजय सं. 1720 वि. में विद्यमान थे। अत: समस्त रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि *'खुम्माण रासो'* का रचनाकाल संवत् 1733-70 वि. के बीच पड़ता है।

खुम्माण रासो की प्रतियों के बारे में बात करें तो इसकी पाँच प्रतियों का पता चलता है -

1. कर्नल टाड की प्रति जो लंदन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में है।

2. भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना की प्रति जिसका विवरण श्री अगरचंद नाहटा ने नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका में छपवाया।

3. माणिक्य ग्रन्थ भण्डार, भींडर की प्रति, जिसका विवरण राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में छपा है।

4. भावनगर के दीवान विजयाशंकर गौरीशंकर ओझा की प्रति जिसका उल्लेख नाहटा जी ने किया है।

5. इनमें से तीसरी प्रति को छोड़कर अन्य किसी में समय-सूचक कोई छन्द उपलब्ध नहीं है और वह भी बहुत विलक्षण-सा है। समय की भी कोई स्पष्टता नहीं है। प्रति के अन्त में लिखा है –

"संवत सर संवत में तेरे से ते ताल।

आथडिया हिन्दू असूर, धरा करे धकमाल।।"[3]

यह प्रति *'खुम्माण रासो'* की प्रतीत नहीं होती। नाहटा जी द्वारा प्रकाशित पूना की प्रति का विवरण उपर्युक्त प्रति से मिलाने पर यह पता चला कि दोनों प्रतियों में कोई साम्य नहीं है। उपर्युक्त दोहे में वर्णित सं. 1343 ग्रन्थ का रचना-काल नहीं होकर वर्णित घटना का समय ही हो सकता है और वह भी इतिहास के अनुसार अशुद्ध ही है। चार पत्रों की इस प्रति में हम्मीर की ही कथा प्रधानता से वर्णित दिखाई देती है। आरंभ में ही कवि ने लिखा है –

"गढ़ां मुगर चित्तोड़ गढ़, राजेराण हमीर।

चित्तोडो ढलते चमर, बड़ो अडुबाहो वीर।।

कहुँ तास गुण री कथा, सुणज्यो सबाण सुचित।

एवे घालक वाता विहद, विधि विधिकत्थ विगत्त।।"[4]

खुम्माण रासो की सभी प्रतियाँ अपूर्ण मिली हैं। श्री विजयशंकर गौरीशंकर ओझा की प्रति का पता न चलने से उसके संबंध में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु शेष सारी प्रतियाँ अधूरी हैं। कर्नल टाड, काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना की प्रतियाँ अभी भी उपलब्ध हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति पूना की प्रतिलिपि जान पड़ती है और जितने छन्द पूना की प्रति में हैं उतने ही टाड की प्रति में भी। टाड की प्रति और पूना की प्रति दोनों में ही समानता दिखाई पड़ती है। खुम्माण रासो की उपर्युक्त दोनों प्रतियों में अंतिम 3576 वीं गाथा अधूरी मिलने से यह आभास मिलता है कि ग्रन्थ में 3575 गाथाएँ ही नहीं हैं, और भी हैं जो प्रतिलिपि करने से रह गई हैं। अर्थात् यह ग्रन्थ अधूरा ही प्राप्त हो पाया है।

वर्तमान में मेरे पास जो प्रति उपलब्ध है वह ब्रजमोहन जावलिया द्वारा संपादित है तथा महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर द्वारा प्रकाशित है। मुझे यह प्रति साहित्य अकादमी नई दिल्ली से प्राप्त हुई है।

2.2 *'खुम्माण रासो'* की कथावस्तु-

'खुम्माण रासो' आठ खण्डों में विभक्त है। काव्य का शुभारम्भ कवि ने अपने इष्ट देव, अंबिका माता, सरस्वती, त्रिपुरेश्वरी आदि की स्तुति के साथ किया है। उक्त देवी देवताओं से उसने शूरवीर, साहसी, स्वाभिमानी और दानदाताओं में अग्रणी पृथ्वीपति खुम्माण के चरित्र सूचक *'खुम्माण रासो'* काव्य की संरचना में सहयोग हेतु याचना की है। काव्य के आरंभ में एकलिंग महादेव के द्वारा गुहिलौतों को प्रदत्त प्रसिद्ध दुर्ग चित्रकूट का भव्य वर्णन करते हुए सूर्यवंश का वंश परम्परा में ब्रह्मा से प्रारंभ करके गुहिल पर्यन्त हुए रघुवंशी राजाओं के नामों का उल्लेख किया है। गुहिल ने कोसल से आकर गाजणगढ़ में अपने राज्य की स्थापना की। उसके चौबीस पुत्र हुए, जिनसे गुहिलौतों की चौबीस शाखाओं का विस्तार हुआ। गुहिल के पुत्र पंजर(अपरादित्य) से बापा का जन्म हुआ। जो आगे चलकर चित्तौड़ दुर्ग का स्वामी बनता है। इस कथा में बापा रावल से लेकर महाराणा राजसिंह तक का वर्णन है जो कि बापा का ही वंश विस्तार है। अब *'खुम्माण रासो'* की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन निम्न है-

काव्य का आरम्भ कवि ने अपने इष्ट देव, अंबिका माता, सरस्वती, त्रिपुरेश्वरी आदि की स्तुति के साथ किया है। कवि कहता है, हे माता! विद्या, बुद्धि और विवेक का वरदान देने वाली और चित्त में वाक् शक्ति को प्रदान करने वाली है। अतः मुझे अपार भाषा का ज्ञान दें ताकि मैं इस काव्य की रचना कर सकूँ। कवि ने मंगलाचरण के लगभग 20 दोहे लिखे हैं। इन सभी में कवि ने विद्या, बुद्धि और विवेक का वरदान माँगा है। इसका एक उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है –

"आव बाव अंबाव, भगत्ति कीजे भारत्ति।

जाग जाग जगदंब, संता सांनिध साकत्ति।।

प्रसन्न हु ठाकर राय, वयण वाचा दाषीजे।

बालक बेलें बांह, प्रीत प्यालो पावीजे।।

महाराज राज राजेस्वरी, दलपत सूं कीजे दया।

मन मोज महिर मातंगिनी, माय करो मोसूं मया।।"[5]

उपर्युक्त कवित्त में कवि अंबिका का आह्वान करते हुए कहता है कि हे अंबिके! आप स्वयं पधार कर अपने भक्त को प्रकाश की ओर प्रेरणा दें। हे जगदम्बे! हे शक्तिमाता! आप जाग्रत होकर सन्तों के सानिध्य में आयें। हे स्वामिनी! आप प्रसन्नतापूर्वक अपने मुख से वचन दें। अपने बालक को अपने कर कमलों से प्रेम का प्याला पिलाइए। हे महारानी! दलपति विजय पर दया करो। हे मातंगिनी देवी! आप मन को प्रसन्नता देने वाली हैं। हे माँ! मुझ पर दया करो।

तदुपरान्त कवि गौरी पुत्र गणेश की वन्दना करते हुए कहते हैं कि गजानन गणेश मेरे कष्टों का निवारण करो। गणेश जी की भौंहे चन्द्र के समान प्रकाशित हैं, उनके सिर के ऊपर धवल वर्ण की गंगा प्रवाहित हो रही है। उनके एक ही स्वच्छ और उज्जवल दाँत है और उनके धड़ पर कंठ के स्थान पर

हाथी का सूण्ड मस्ती से झूमता रहता है। उनके अंगों में और बुद्धि में अतुलनीय शक्ति है। इस प्रकार वे विघ्न और बाधाओं का बलपूर्वक संहार करने वाले देवता हैं।

देवताओं के बाद कवि ने गुरू की वन्दना की है। ईश्वर के बाद गुरू है जो हमारा पथ-प्रदर्शक होता है और भले-बुरे का ज्ञान देता है। मध्यकाल में कबीर ने भी गुरू के महत्व पर प्रकाश डाला है। दलपति विजय भी गुरु की महिमा का बखान करते हुए उसे स्पर्शमणि (पारस पत्थर) के समान बताया है जो लोहे (अज्ञानी) को भी सोने (ज्ञानी) का रूप दे देता है–

"अलि हुवें अलि (ईलिका, संगति सुमति सुदेव)।

पारस गुरु परमेसवर, लोह हेम कर लेत।।"[6]

तत्पश्चात् कवि राजा खुम्माण का वर्णन करते हुए कहता है कि वह (खुम्माण) साहसी, शक्तिशाली महापुरूष और क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ नरेश था। वह उदयाचल पर उदित होते, अपने प्रचण्ड प्रकाश से तपते सूर्य के समान उदित हुआ था। उसके चरित्र बोध से अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

अब आगे कवि ने मेवाड़ के सर्वोपरि दुर्ग चित्तौड़गढ़ का भव्य वर्णन किया है। यहीं से कथा की शुरूआत होती है। यह दुर्ग चारों दिशाओं में समान रूप से खुला हुआ है और भू-मण्डल के विशाल तिलक के समान सुशोभित है। इस किले की बनावट इस प्रकार की गई है कि शत्रु दुर्ग तक कभी नहीं पहुँच सकता। पर्वत के समीप ही गंगा के समान पवित्र गंभीरी नदी बहती है। दुर्ग के चारों ओर सुदृढ़ गोल बुर्जे बनी हुई हैं और परकोटे पर बने कपीशीर्षों की पंक्तियाँ अत्यधिक शोभा देती हैं। इसमें तालाब, कुएँ और बावड़ियों की अधिकता के कारण कभी भी पानी का अभाव नहीं रहता। यहाँ का भण्डार भी काफी समृद्ध है। इस दुर्ग के सभी मनुष्य धनवान हैं और यह विद्वानों का स्थान है। यहाँ के मंदिर, चारों ओर से खुले हैं तथा भवन और सुंदर आँगन सहित सात मन्जिलें हैं। दुर्ग में चारों ओर चौरासी बाजार बने है, जिनमें व्यापारी अपना व्यापार करते है। यहाँ विद्वतजन् रात दिन वेद और वैदिक साहित्य का अध्ययन करते रहते हैं। यहाँ अनेक प्रकार के बाग-बगीचे हैं तथा चौरासी जातियों के वणिक, कायस्थ, धर्म और राजनीति-निपुण ज्ञानी, विद्वान व्यक्ति निवास करते हैं। यहाँ उत्तम कोटि के

चारण भाट आदि गुणीजन (कवि) रहते हैं, जो प्रचुर मात्रा में उत्तम कोटि की काव्य रचना करते हैं। गहलोत वंश का श्रेष्ठ व्यक्ति इस दुर्ग का अधिपति है –

"चित्रकोट चउरासी सरें। परवत मोटो छें ऊपरें।।

च्यारें दिस सरिषो चउसाल। वसुधा तिलक वण्यो सुविसाल।।"[7]

इसमें सूर्यवंशी राजवंश का वर्णन किया है। ये कभी कोशल राज्य में राज करते थे। गुहिल (गुहादित्य) गाजण दुर्ग में आकर राज करने लगे और उसने अपने चौबीस पुत्रों को सामंत रूप में स्थापित करके पृथ्वी पर अपनी चौबीस शाखाएँ प्रसारित की। वे पृथ्वीपति के रूप में प्रकट हुए।

"कोसल पिण छा समये किणे। गहिलो आण्योगढ़ गाजणे।

सामंत घरे सुत सोवीस। ब्रसरि साष प्रगट्या पुहवीस।।"[8]

(गुहिल के वंश) में पंजर के पुत्र के रूप में शक्तिशाली नरेश बापा का जन्म हुआ। बापा ने अपनी भाले की शक्ति पर चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

"प्रगट्यो श्री पंजर घरें, बापो नृप बलवंत।

ग्रहे तेग चित्तौड़गढ़, साबल बल सामंत।।"[9]

एक बार गाजणगढ़ पर मुसलमानों ने भयंकर संग्राम कर दिया। इस युद्ध में गुहिल वंश के सभी सामंतगण वीरगति को प्राप्त हुए। असुरों के भय से त्रस्त एक गर्भवती रानी गाजगढ़ को छोड़कर मेवाड़ में आ गई। मेवाड़ के नागदा ग्राम में एक ब्राह्मण के घर में रहने लगी। वहाँ उसने बापा को जन्म दिया, वह बालक प्रातःकाल में उदित होते सूर्य के समान तेजस्वी था।

"नारी आवी नागद्रहें, नागेल द्विज घर नारी रहे।।

अनुक्रमें जायो बापों बाल। ऊगंतो जांणे किरणाल।।"[10]

कवि ने बापा को उदित होते सूर्य के समान तेजस्वी बताया है। बापा जब आठ वर्ष का हुआ तब जंगल में गाय चराने गया वहीं उसकी भेंट विश्वविजेता हारीत ऋषि से हुई। ऋषि ने उससे उसका परिचय पूछा। अपना परिचय बताते हुए बापा ने कहा कि मैं रघुवंशी क्षत्रिय हूँ और अपने पिता का नाम नहीं जानता। हारीत ऋषि ने उसे महादेव की उपासना करने को कहा –

"एकलिंग तुम सेवा सदा। महारिद्ध पामो तुम मुदा।

पंचामृत सूं करो पषाल, चोसर कमल चोडो चउसाल।।"[11]

ऋषि ने बापा से कहा – 'तुम सदैव भगवान एकलिंग महादेव की सेवा किया करो। तुम्हें आनन्द सहित महाऋद्धि की प्राप्ति होगी। शिवमूर्ति को तुम पंचामृत से स्नान कराओ और इनके चारों ओर कमल पुष्पों की माला चढ़ाओ।' बापा ने ऋषियों में श्रेष्ठ हारीत के आदेश को स्वीकार किया और इस प्रकार एकलिंग की सेवा और पूजा करने लगा।

एक दिन विशाल वटवृक्ष के नीचे बापा सो रहा था। उस समय माता पार्वती (शक्ति) वहाँ विचरण कर रही थीं। उन्होंने बापा को जगाया और कहा कि – 'हे राजकुमार! तू क्यूँ सो रहा है? मैं अक्षत कुमारी हूँ और तुमसे विवाह करना चाहती हूँ।' बापा ने उत्तर दिया – 'हे माता! यदि कोई पुत्र माता से विवाह करता है तो सारा संसार दुःखी हो जाता है। आप मेरी माता हैं और मैं आपका पुत्र हूँ अतः हे माता! इस अपने सेवक का मंगल करो।' बापा के इन वचनों को सुनकर माता अम्बा बहुत ही प्रसन्न हुईं और उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण करने का वचन दिया।

बापा को वीर योद्धा जानकर देवी ने उसे स्वयं भाले, तलवार, धनुष, बाण, तरकस प्रदान किए। बापा को दिया गया खड्ग तोल में बत्तीस मण का और कटार सोलह मन वजन की थी। बापा इतना अधिक शक्तिशाली था कि वह आठ भैंसों को खड्ग के एक ही प्रहार में मार सकता था। उसने बीस बाघ

मारे थे। उसका परिधान एक सौ चार गज का था तो भी उसक नितम्ब नहीं ढँकते थे। सामंतराजा बापा के पाँव में स्वर्णकटक साठ मन का था।

हारीत ऋषि बापा का बहुत अधिक ध्यान रखते थे उन्होंने बापा को कैलाश पर्वत पर साथ चलने को कहा और कहा कि देवाधिदेव महादेव तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें –

"कहे हारीत सुणो मुझ वात। बाप आवें तूं परभात।

म्हें पुंहचेरयां गिर कैलाश। शिवजी पूरें ताहरी आस।।"[12]

अगले दिन सुबह जब बापा पहुँचा तो देखा कि ऋषि आकाश मार्ग से जा रहे हैं, उसने कहा हे ऋषिराज! मेरी सेवा में कौन-सा दोष रह गया? ऋषि ने अपने विमान को ठहराया और बापा से पूछा कि तुमने विलंब क्यों किया? अब मैं जैसा कहूँ वैसा करो। ऋषि ने बापा से कहा तुम अपना मुख खोलो, मैं पान डालता हूँ। परन्तु बापा के मन में संदेह पैदा हो गया कि मैं राजपुरुष क्षत्रिय हूँ। यह सन्यासी पता नहीं किस जाति का है? यह सोचकर बापा ने अपना मुख पीछे कर लिया और ताम्बूल (पान) पाँव पर जाकर गिरा। ऋषि ने उसको ऐसा वचन दिया कि तुम्हारे पाँवों के नीचे का राज्य तुम्हारे अधिकार से नहीं जाएगा। यदि तुम यह ताम्बूल निगल जाते, तो चौदह ही चौकड़ी (भुवनों) का राज्य प्राप्त करते। तुमने अपने मन में संदेह को जन्म दिया है अतः अब तुम मुझको दोष मत दो। उसके बाद ऋषि कहते हैं –

"बुद्ध ऊपजें भावी लार। पंडित लाष कहो हज्जार।

जेह नसीब मांहें पावीस। तूं मत धारें मन मां रीस।।"[13]

उपर्युक्त पंक्ति में हारीत ऋषि कहते हैं कि पण्डित (ज्ञानीजन) चाहे कुछ भी कहें, बुद्धि भाग्य के अनुसार ही उपजती है। जो भाग्य में लिखा है, वही तू पाएगा। अतः मन में किसी प्रकार के क्रोध को

जन्म मत दे। ऐसा कहकर हारीत ऋषि उड़ गए। बापा मन नें विश्वास धारण करके महादेव और शक्ति (पार्वती) की सेवा करते हुए ह्रदय में गुरु का ध्यान धारण किए रहता था।

एक दिन शिवजी ने गुप्त रूप में एक घोड़ा भेजा और कहा कि हे! पराक्रमी पुरुष ऐसे क्यों बैठा है? अब कोई तो युद्ध कर। गर्व के साथ अब हाथ में तलवार पकड़। ऐसा सुनकर बापा ने घोड़े को तैयार किया और बख्तर धारण कर प्रस्थान किया। प्रस्थान के समय उसने अपनी माता को प्रणाम किया। बापा की माता ने कहा, 'हे पुत्र सुनो! तुमने यह क्या सोचा है। तुम परदेश में जाकर रहोगे तो मैं यहाँ अकेली कैसे रह पाऊँगी?'

बापा ने उत्तर दिया -

"माता सुणो मांहरी वीनती। ऊणारथ भाषो किम इती।।

जात तणा आपें रजपूत। बेठां न रहें घर रो सूत।।"[14]

हे माताजी! मेरी विनती सुनो। आप व्यर्थ ही ऐसा क्यों कह रही हैं। जाति से हम राजपूत हैं। घर में सोए बैठे नहीं रह सकते हैं। हम किसी राजा की सेवा करेंगे और सेवा करके जागीर का पद प्राप्त करेंगे। वह अपनी माता को महादेव और पार्वती की सेवा करने के लिए कहता है जिससे मन में श्रद्धा भाव उत्पन्न होगा। माता से आशीर्वाद लेकर बापा महादेव से निवेदन करता है –

"बापो शिवजी थी वीनवें। दिस जाऊँ केही हूं हिवें।।

शिवजी जपें गढ़ चित्तौड़। ए दीधी तुझने मैं ठोड।।"[15]

बापा महादेव जी से निवेदन करते हुए कहता है कि हे प्रभु! अब मैं कौन-सी दिशा में प्रस्थान करूँ? शिवजी ने बताया कि चित्तौड़गढ़ जाओ – यह स्थान मैंने तुमको दिया है। वहाँ चित्रांगद नाम का

राजा राज करता है, वह अपनी अखण्ड आज्ञा के साथ प्रजा का पालन करता है। राजा के सम्मुख जाकर अभिवादन करो। राजद्वार पर रहते हुए राजा की सेवा करो। बापा ने शिव की आज्ञा का पालन करते हुए चित्तौड़ दुर्ग में प्रवेश किया। जब बापा वहाँ पहुँचा तो राजा ने उसका अत्यधिक आदर सहित सम्मान किया। राजा ने बापा से उसकी जाति और निवास स्थान के बारे में पूछा, साथ ही साथ आने का कारण भी जानना चाहा -

"राजा पूछें तुम कांई जात। ते मुझ सूं परगासो वात।।

कहो तुमें किम आया इहां। वास तुमारो कहो ने किहां।।"[16]

बापा ने कहा मैं रघुवंशी राजपूत हूँ और श्री पंजर का पुत्र हूँ। हमारा निवास स्थान गढ़ गाजणा है। उसने जवाब दिया, मैं यहाँ उदरपूर्ति हेतु चाकरी करने आया हूँ। सेवा करूँगा और चाकरी में उपस्थित रहूँगा। राजा ने पूछा जो वेतन लेना चाहते हो वह बोलो। बापा ने कहा दोनों भुजाओं की सेवा का वेतन एक-एक लाख रुपए लूँगा। बापा ने कहा सूर्योदय होते ही एक लाख रुपए लूँगा और युद्ध में लाखों शत्रुओं के समूह का संहार करूँगा। राजा ने मन में सोचा – मुझको छोड़कर इसको इतना कौन देगा? मुझे छोड़कर यह कहाँ जाएगा यह सोचकर राजा ने बापा को नौकरी दे दी। बापा प्रतिदिन लाख-लाख रुपए प्राप्त करता था और रात-दिन राजा के पास रहता था। बापा अत्यधिक शक्तिशाली और हठी योद्धा था। वह युद्ध में भयंकर टक्कर लेने वाला साहसी शूरवीर था। सामंत बापा जब राज सभा में बैठा होता तो उसके सामने कोई क्षात्रधर्मी वीर दिखाई नहीं देता था। वे राजपूत बापा के सामने ऐसे लगते थे जैसे शारदीय पूर्णिमा के चाँद के सामने तारागण।

"सुभा मांहि बेंठो सामंत। निजर न आवें को रजवंत।

बापा आगे रजधर इसा। सारद आगे तारा तिसा।।"[18]

कवि कहता है कि पर्वत के पार्श्व में जैसे कोई छोटी टेकरी होती है वैसे राजपूत चारों ही दिशाओं में बैठे थे। बापा का तेज सूर्य के तेज के सामने तप रहा था (उसके तेज के सामने) दूसरे क्षत्रिय ऐसे लगते थे, मानो खद्योत (जुगनू) हों।

बापा हाथियों के झुंड पर शार्दूल सिंह के समान गर्जता था। वह परम तपस्वी, खड्गधारी, निर्भीक और अद्वितीय शूरवीर योद्धा था। उसकी मूंछों की लंबाई सवा गज थी। हाथ में धनुष धारण किए हुए बापा स्वाभिमानी महाबली और दृढ़ प्रतिज्ञ था। वह ऐसा प्रचण्ड वीर था जो परायी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करता था और न शत्रुओं को पीठ ही दिखाता था। युद्ध से पलायन कर गए कायर योद्धा से वह युद्ध नहीं करता था –

"पर त्रिय नूँ परसें नहीं, पिसुणां न दियें पूठ।।

भागा भिड सूं नवि भिडें, गाहड मल्ल गरुठ।।"[19]

राजा चित्रांगद के दरबार में छत्तीस राजकुलों के सामंत सुशोभित थे। एक दिन प्रजा के लोग इकट्ठे होकर राजसभा में आए और राजा से फरियाद करने लगे। राजा ने उनके पुकार करने का कारण पूछा? प्रजा ने राजा से निवेदन किया कि हे राजन! हमारे यहाँ दैत्य आने लगा है। उसने हमारा प्रदेश वीरान कर दिया है। हे राजा चित्रांगद! आप हमारी रक्षा कीजिए। राजा चित्रांगद सुनकर ऐसा क्रुद्ध हुआ, मानो आग में घी डाला गया हो। वह मूंछों पर ताव देते हुए बोला कि राजसभा में बीड़ा (तांबूल वीटिका) घुमाया जाए। मंत्री ने राजा से कहा कि देश परदेश में जागीरें प्राप्त करने वाले ये राजागण किस काम आएँगे। रक्षक के अभाव में देश उजड़ गया है। तब राजा ने सभी को संबोधित करते हुए कहा कि हे मेरे सभी महान योद्धागणों! सुनो! आप मेरी राजसभा में सेवा करते हैं। आप दैत्य को पकड़कर मेरे सामने प्रस्तुत करें। आपने जो नमक खाया है, उसका प्रभाव दिखायें –

"सुणज्यो सकल वडा जूझार। मांहरी सेव करो दरबार।।

पकड़ दैत मो आगें धरो। लूंण तणी तासीरी करो।।"[20]

राजा सभी सामंतगणों से कहता है कि आप मेरे स्वादिष्ट ग्रास का उपभोग करते हैं और पुरस्कार के रूप में हाथी थोड़े प्राप्त करते हैं। मैंने आपको स्वर्ण मोती-जटित कटक और दूणे जागीरी पट्टे दिए हैं। योद्धाओं ने उत्तर दिया कि, राजन्! मनुष्य से युद्ध करते हुए तो मुकाबला किया जा सकता है, पर दानव से उसके दावपेंचों का मुकाबला नहीं किया जा सकता। युद्ध करके उस पर प्रहार कैसे किया जा सकता है। राजा ने योद्धाओं की भर्त्सना करते हुए कहा कि मैंने आप लोगों की योग्यता और साहस को देख-परख लिया है। आप लोग अपरिपक्व (कमजोर) हो, दिखने में ही अच्छे दिखाई देते हैं। हे कायरों! आप लोग काम पड़ने पर पलायन कर जाते हो। राजा कहता है कि मेरी सेना में सत्तर लाख हाथी हैं, उनमें से कोई भी समर्थ नहीं दिखाई देता है। एक दानव के सामने तुम छिप गए, दुबक गए। सभी सामंत आतंकित हो गए। राजा ने कहा – या तो आप लोग मेरा देश छोड़कर चले जाएँ, या फिर असुरपति से जाकर लड़ें। सामंत बोले – हम राक्षस से किस प्रकार लड़ाई करें। यदि मनुष्य हो तो हम उससे बराबरी की टक्कर ले सकते हैं। बापा प्रतिदिन दो लाख रुपए वेतन लेता है, उसका बीड़ा दीजिए। वह प्रथम कोटि का शूरवीर योद्धा है। वही उस राक्षस से युद्ध करेगा।

राजा ने बापा को बीड़ा दिया। उसने दानव (राक्षस) से लड़ने के लिए बीड़ा स्वीकार कर लिया। उसने कहा इन सभी दुर्बुद्धिवाले सामंतों ने अपना सत्व खो दिया है, पर मैं क्षात्रधर्म में क्षीणता नहीं लाऊँगा। आदेश प्राप्त करके वह घर पर आया और शक्ति के मंत्र की साधना की। शक्ति (अंबा) माता ने प्रकट होकर पूछा – हे पुत्र! बताओ, मुझे किस कारण से स्मरण किया है। हे बापा! आज अपनी माता (शक्ति) से क्या काम आ पड़ा है? बापा कहता है कि हे माता! मैंने दानव से युद्ध करने का बीड़ा स्वीकार किया है। सभी सामंत योद्धाओं ने मुझ पर व्यंग्य किया है। हे बायण माता! तू मेरी बांह पकड़ (सहायता कर) और अपनी सातों सखियों के साथ आ। जिससे मैं शत्रु (दुष्ट) के टुकड़े-टुकड़े कर सकूँ और मेरा यश पृथ्वी के नौ खण्डों में व्याप्त हो जाये। दैत्य का स्थान कहाँ है और उसकी शक्ल और पहचान के लक्षण

कैसे हैं। माता ने बताया – वह राक्षस द्रोणगिरी में रहता है। वह अपने आहार के लिए यहाँ विचरण करता है। दुर्दान्त होने से उसका नाम दानव है। उसके एक-एक गज के लम्बे दाँत हैं–

"दाणब ते द्रोणगिरी रहें। चेजा काजे इहां आवि वहे।

दाणव नाम अछे दुरदंत। तिण रे गज गज भरिया देत।।"[21]

माता राक्षस का वर्णन करते हुए कहती हैं कि शत्रुओं के लिए कालरूप वह दानव सात ताड़ वृक्षों के बराबर लम्बा है। उसके पास दो हजार घोड़े हैं। वह मटमैले वर्ण का है। उसके सात सिर और इक्कीस भुजाएँ है। वह दिन-रात क्रोध से भरा रहता है। उसकी पुत्री साक्षात् अप्सरा है। वह अक्षत कुमारिका और इन्द्र की वंशजा है। वह साक्षात् शक्ति की अवतार है। उस कन्या का विवाह तुमसे कराऊँगी और उस अभिमानी राक्षस का संहार मैं करूँगी। सभी देश भली भाँति बस जाएँगे और तुमको मैं पृथ्वी का राजा बनाऊँगी।

बापा ने सिलह वख्तर धारण किये और हाथ में भाला पकड़ा। राजसभा में आकर उसने कहा कि दैत्य को मारने के लिए मैं तैयार होकर ऐराकी घोड़े पर आरूढ़ होकर आया हूँ। यदि कोई राजपूत मेरे साथ आना चाहे तो आ सकता है। बापा के सामने सभी योद्धा पराजित हो गए और बोले – तुमको छोड़कर और कौन तलवार धारण कर सकता है। राजा चित्रांगद को अभिवादन करके शीघ्रता से घोड़ा दौड़ लगाने लगा। बायण माता अपनी सातों सखियों को लेकर अपने रास्ते पर चल रही थीं। नौ नाथ, चौरासी सिद्ध, अट्ठासी हजार प्रसिद्ध ऋषि और गणपति गणेश, तैंतीस कोटि देवताओं को साथ लेकर पृथ्वीपति बापा ने युद्ध किया और विजयी हुआ।

चित्तौड़गढ़ के सभी सामंतों ने विचार किया कि हम लोगों में क्षात्रधर्म का कोई लक्षण अवशिष्ट नहीं रहा है। अग्रगण्य नेता बापा ही है, हम सभी सामंतगण उसके पीछे हैं। यहाँ बैठे रहने से हमारी इज्जत नहीं रहेगी। राजा चित्रांगद हमारा अपमान करेगा। अतः हमें यहाँ से चलना चाहिए।

राजा चित्रागंद मन में विचार कर रहा था कि मेरे सभी सामंत मुझसे रूष्ट हो गए हैं। मैंने मन में बुद्धिहीनता को स्थान देकर उन्हें मूर्खतापूर्ण वचन कह दिए। मंत्री का कहा मान कर मैंने सामंतों की सुधि तक नहीं ली। इस पृथ्वी पर न्याय के द्वार चित्तौड़गढ़ को हाथ में रखकर दे दिया। धिक्कार है, धिक्कार है रे निकम्मे कला (मोरी) तूने चित्तौड़ पर कलंक लगवा दिया है। मूर्खाधिराजा ईर्ष्या करके तुमने चित्तौड़गढ़ दुर्ग खो दिया।

मंत्री सामंतों को दुर्ग में लौट आने के लिए मनाने गया परन्तु सभी ने इनकार कर दिया। मंत्री भयभीत होता हुआ वापिस लौट गया और जाकर राजा से कहा कि सामंत गण आने को तैयार नहीं हैं। उन्होंने दुर्ग पर आक्रमण करने का निर्णय लिया है। राजा चित्रांगद ने क्रुद्ध होकर कहा कि वे उत्साह के साथ आयें। युद्ध करके भीड़ को नष्ट करूँगा। सत्तर लाख हाथियों सहित शक्तिशाली सामंत बापा से आकर मिले और उसको अभिवादन करके कहा कि आप हम सब के सरदार हैं। सामंतों की सेना के बहुत से स्वामी वीरों ने बापा को सेनापति नियुक्त किया।

बापा की वीरता का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि बापा तलवार बाँध कर अपने तप और तेज के साथ सिंहासन पर प्रतप्त हो रहा था। उन्नत मस्तक वाला वह बापा शत्रुओं के सिरों पर प्रहार करता था। पृथ्वी पर उसका आतंक था। सुदृढ़ दुर्ग ध्वस्त होने लगे। शत्रुओं के शरीर (हृदय) काँप उठते थे। उस महान वीर के द्वारा मारकाट करते हुए आगे बढ़ते जाने से दसों दिशाएँ थर-थर काँप उठती थीं। हे नागद्रहा के नरपति तुम्हारे सिर पर (सम्राटों के योग्य) छत्र और चमार दुलाए जाते हैं। वीराधिपति बापा के सैन्य दल के साथ युद्धार्थ प्रस्थान करने पर समुद्र में शेषनाग विचलित हो जाता है, अर्थात् पृथ्वी काँप उठती है –

"बांधि तेग भिड बप्प तषत तप तेज प्रतप्पें।

अडावीड उन्नाड, पिसुण सिर दाव समप्पें।।

धरा धाक मेवास, ध्रसकी रिम धड़ धड़क्के।

बधत वड वीर वधत, थरक्की दशों दिस थरक्कें।।

नर-नाह वाह नागेद्रहा, सीस छत्र चामर ढलें।

भिड राय बप्प थल भारथी, सामुंद सेस सलस्सलें।।"[22]

बापा और उसके सभी साथी भयंकर दुर्दान्त असुर से युद्ध कर रहे थे। दो हजार सैनिकों के साथ पृथ्वीराज बापा के लिए युद्ध करके पूरी शक्ति के साथ शस्त्राघात करते हुए उसका सिर आकाश तक लग रहा था। दानव की सेना को अपने पाँवों के नीचे रौंद कर नागदा के स्वामी बापा ने उत्साह सहित भयंकर युद्ध किया। बापा के जो योद्धा भूमि पर मृत या घायल पड़े हुए थे, शक्तिमाता ने उन्हें स्वस्थ कर दिया। बापा के भुज-बल में अंबिका निवास कर रही थीं – ऐसी अनुभूति (पूर्व-कथा) है –

"बापा भिड़ धर जें पड़ें, साजा करें सगन्त।

भुजवल बापा रें अंबिका, वासी एह विगन्त।।"[23]

दलपति विजय कथा कहते हुए वर्णन करते हैं कि जब दानवों से बापा सामंत सहित युद्ध कर रहे थे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों व्यंजनों के षटरस और साहित्य में प्रयुक्त नवरस एक ही साथ एक ही दिन में देखे गए। मुख से कही गयी वस्तु को किस प्रकार आँखों से दिखाया जाये? –

"षट रित नवरस एकण दिह। दीठा दाणव लड़तां दीह।।

कही दिषावें सो किण भंति। वात वषाण करें दलपत्ति।।"[24]

उस समय भू-मण्डल के चारों खण्डों से बड़े-बड़े योद्धा आकर इकट्ठे हुए। क्षात्रधर्मी योद्धा तलवारें थामें सिलह बख्तर धारण किए योगियों के समान दिखाई देते थे।

दलपति विजय ने युद्ध का वर्णन षड्ऋतु के माध्यम से किया है। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए लिखते हैं ग्रीष्म ऋतु में पानी सूख जाने पर प्रतीत होने वाले ताप के समान तोपों से उलगती आग की

झड़ी से उत्पन्न ताप व्याप्त हो रहा था। शूरवीर योद्धा और कायर सैनिक दोनों ही संतप्त थे। सूर्यनारायण जलाशयों में भरे जल के लिये शौर्य का प्रदर्शन कर रहे थे।

वर्षा ऋतु से तुलना करते हुए लिखते हैं कि हाथियों के गंडस्थलों से झरता मद मानों वर्षा ऋतु में बरसते जल की धाराएँ हैं। युद्ध स्थल में निनाद करते नगाड़े और हाथियों की चिंघाड़ मानों गर्जना करते बादल और चमचमाट करते अंकुशायुध मानों बादलों में चमकती बिजलियाँ हैं। ऐसे वातावरण में पर्वतों पर चातक प्रसन्नतापूर्वक बोलने लगते हैं।

धूम्र और कोलाहल आकाश में छाये बादलों और वर्षा की झड़ी से समता करते हैं। कलकल ध्वनि के साथ बहता रक्त मानों वर्षा ऋतु में बहते नदी नाले हैं। शत्रुओं के सिरों पर तलवारों के प्रहारों से बहती रक्त की धाराएँ मानों वर्षाकाल में परनालों में गिरती जलधाराएँ हैं –

"धुआरव वर झड़ वादला। रूद्र वहें षलहल षाहला।।

धड़ सिर पर वहती धाराल। पड़ियां लग बूंगा परनाल।।"[25]

दलपित विजय ने षड्ऋतु का वर्णन युद्ध के सन्दर्भ में किया है जबकि *'पृथ्वीराज रासो', 'संदेशरासक'* आदि में षड्ऋतु का वर्णन विरह दशा को दिखाने के लिए किया गया है।

अंततः दैत्य मारा जाता है। दैत्य के मारे जाने पर दानव द्रोणागिरी के सैन्यदल शस्त्र अचानक लुढ़क गए। शत्रु रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए। शस्त्रधारी योद्धा उत्साहित होकर तीव्र आक्रमण के लिए दौड़ पड़े। इस प्रकार असुरों का संहार करके शत्रु समूह के गर्व को नष्ट कर दिया। अनेक शत्रु मुख में तिनका लेकर भाग गये, कितनों ने ही किंकर बन हाथ जोड़ दिए। वरदायी राजा बापा की फतह के शुभ मांगलिक वाद्य बजाये गए। क्षात्रधर्मी योद्धा राजाओं में सर्वोपरि राजा बापा ने प्रलयंकारी युद्ध किया। नागदा के अधिपति बापा ने मानव के रूप में उसके दुर्ग द्रोणगिरि पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् पद्मिनी से विवाह किया। द्रोणगिरी में अपना स्थान स्थापित करके बापा ने अपने साले का राजतिलक किया क्रमशः प्रयाण करते हुए वह गढ़ गाजणा आया, बापा दुर्ग को घेर कर बैठ गया। सुलतान शाह

सलीम बापा दुर्ग को घेर कर बैठ गया। सुलतान साह सलीम ने बापा को पत्र लिखा – हे बापा! तुम बहादुर हो! युद्ध किसलिए करते हो। इस जगह अपनी काया में गुमान मत करो। मैंने तुम्हारे पूर्वजों को नष्ट किया था एक तू ही पंजर पुत्र जीवित रह गया। मैं तुमको रहने के लिए स्थान दूँगा अतः तू युद्ध करने की इच्छा का त्याग कर।

राजा बापा ने फरमान का उत्तर फरमान लिख कर दिया – हे शाह सलीम! सुनो मैं तुम्हारी शक्ति को नष्ट कर दूँगा। यदि योद्धा बापा हूँ तो मूल सहित तुम्हारे कुल का सर्वनाश कर दूँगा। भाट के हाथ में फरमान देकर बापा ने अश्वपति शाह सलीम को कहलाया कि दूत भेजने की क्या आवश्यकता है– तलवार उठाओ हम युद्ध करेंगे। आखिरकार युद्ध हुआ और बापा ने विजय प्राप्त की।

गाजणा में स्थान स्थापित करके बापा ने चित्तौड़ पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। तत्पश्चात् बापा रावल और चित्रांगद मोरी दोनों में युद्ध हुआ। वीर सामंत घायल होकर गिरते थे। वे गिरते पड़ते खड़े होते और शीघ्रता से पुनः तलवार उठा कर लड़ने लग जाते थे। इस ओर से बापा आक्रमण करता था और उधर से चित्रांगद मोरी। सूरज और राहु के मध्य होने वाले संघर्ष के समान ही दोनों ओर के वीर सामंत जयघोष करते हुए त्वरा के साथ परस्पर संग्रामरत थे –

"इत बघो हल्लां करें, इत चित्रांगद हल्ल।

जूड़ा सूरज राह ज्यूं, दोई दल्ल हलल्ल।।"[26]

अंततः चित्रागंद मोरी पराजित हुआ और नागदा के स्वामी बापा रावल ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

वैशाख शुक्ल पंचमी गुरुवार को पुष्य नक्षत्र में बापा चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) में सिंहासन पर बैठा। चित्रांगद मोरी की पद्मिनी जाति की अति सुन्दर सत्ताइस पुत्रियों के साथ बापा ने विवाह किया। वे रंभा के समान अद्भुत सौन्दर्य से युक्त, उर्वशी के समान अत्यन्त अनुपम, अप्सरा स्त्रियाँ थीं जो

अनुहार में अप्सराओं से श्रेष्ठ थीं। राजाओं में श्रेष्ठ नागदा का नरेश व्रतधारी बापा प्रजा का पालन-पोषण अच्छे तरीके से करता था। दुर्गपति राजा बापा जब वृद्ध हो गया, तब मन में विश्वास लेकर वह काशी चला गया। उसने अपने राज्य की सत्ता अपने पुत्र बाला को सौंप दी। बाला बहुत प्रसिद्ध योद्धा था। तत्पश्चात् क्रमशः आल्हण सी, भद्रण, गोदड़, चक्रमासी, जोगा, वरड़, रावल, शिवराज, होमा, हरिघर, हंसराज, वेणा, दुर्गा, रूपा, महिराण और रावल करण तथा उसका पुत्र खुम्माण शासक हुआ। रावल खुम्माण विरूदधारण करने वाला बड़ा मणिधारी राजा हुआ। इस प्रकार बापा रावल का चरित विषयक खण्ड सम्पन्न हुआ। इसी के साथ प्रथम खण्ड पूरा हुआ।

अब द्वितीय खण्ड की कथा आरम्भ होती है। कवि कहता है कि हे माँ शक्तिदेवी! इसे (कथा) मैंने अपनी समझ के अनुसार प्रथम खण्ड की कथा पूर्ण की। आप मेरे निकट रहें ताकि मैं आगे भी कथा कह सकूँ-

"पहलो षंड पूरो ए थयो। मांहरी बुद्धि सारू (मैं) कह्यो।।

सानिध वीजे मात सगत्त। कही उगति कवियण दलपत्त।।"[27]

अब चित्तौड़ दुर्ग पर रावल कर्ण का शासन था। उसकी एक सौ अठहत्तर रानियाँ थीं। रानी रत्नावली रूप और शील में सीता के समान थी। एक दिन राजा करण ने सोचा कि मैं एक विशाल प्रासाद बनवाऊँगा। करण सिंह ने प्रासाद के निर्माण के लिए समस्त सुथारों (सूत्रधार शिल्पी) को बुलवाया और ज्योतिषियों को आमंत्रित कर मुहूर्त पर विचार करने को कहा। माघ शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार को नींव का काम सम्पन्न हुआ। प्रासाद बहुत ही सुंदर था, ऐसा लगता था मानों साक्षात् इन्द्रविमान हो। जो पर्वत के बराबर ऊँचा था और उसका शिखर आकाश को स्पर्श करता था। वह मानों हिमालय पर्वत का श्रृंग था, जो आकाश के गिरने की शंका से भार को उठाने वाले योद्धा के समान खड़ा था –

"वारू जांणे इंद्र विमान। ऊंचो अचल सीस असमान।।

जाणे हेमाचल रो टूंक। गयण संबंध भटी धोरिसंक।।"[28]

चित्रकार वर्धमान ने इस प्रासाद में चित्रकारी की थी। वह विश्वकर्मा के समान श्रेष्ठ था। वर्धमान की पुत्रवधु कनकलता ने एक ऐसा भाव-चित्रण किया जिसमें यमुना नदी का किनारा, नव योजन (छत्तीस कोस) के विस्तार वाला दिल्ली नगर और उसमें एक स्तंभ के प्रासाद में पाँच अतिसुंदर रूप वाली पाँच सुंदरियाँ हों। इस तरह के भाव-चित्रों को देखने के लिए वहाँ श्री खुम्माण कुमार आया। खुम्माण कनकलता पर मुग्ध हो गया लेकिन कनकलता ने उसे धिक्कारते हुए कहा दूसरों की स्त्रियों पर दृष्टि डालने वाले चोर होते हैं। खुम्माण ने उस चित्रकार सुंदरी से भाव-चित्र का वृत्तांत पूछा – उसने बताया कि मेरा पीहर दिल्ली नगर में है वहाँ तोमरवंशी राजा राज करता है। उसकी पुत्री रतिसुंदरी रूप सौन्दर्य में रंभा अप्सरा के समान है पर जिद्दी है। यमुना के तट पर बने इस इकथंभे महल में वह राजकुमारी रहती है। उसकी सेवा उसकी पाँच सहेलियाँ करती हैं। वे कायस्थनी मालिन और चित्रकार तथा तंतोलिन है। पाँचों ही सखियाँ बहुत सुंदर शोभा देने वाली हैं। एक दिन मंदिर में बैठकर रति सुंदरी ने प्रण किया कि जो अपने बल से इस गजस्तंभ को वेध देगा और जिसके भय से पृथ्वी कांपती हो, देवताओं का राजा इन्द्र भी जिसके अधीन हो, ऐसे ही राजा से मैं विवाह करूंगी –

"षमसें वींधें षंम नैं, धर धूणवे धराय।

इस परणू राजिंद इस्यों, जो वांसें सुरराय।।"[29]

कनकलता ने उसे (खुम्माण) को दिल्ली भेज दिया। जब वह वहाँ पहुँचा तो पनघट पर पनिहारिनों को बात करते सुना कि राजा जेत की बेटी ने प्रतिज्ञा कर रखी हैं कि जो खंभे का वेध करेगा उसी से विवाह करेगी। वह गज स्तंभ साठ हाथ ऊँचा, वह सात धातुओं में निर्मित और बहुत मोटा है तथा बारह पुरुषों की भुजाओं में आने वाला है। ऐसे खंभे को कौन राजा बिंध सकेगा? –

"साठ हाथ ऊंचो गज षंभ। सात धात रो प्रथुल असंभ।

इस परणू राजिंद इस्यों, जो वांसें सुरराय।।"[30]

राजकुमार ने सारी बातें सुन ली और उन स्त्रियों से उनका परिचय पूछा और अपना परिचय बताते हुए कहा, मैं चित्तौड़गढ़ से आया हूँ। कनकलता ने मुझको पत्र दिया है। उन स्त्रियों ने राजकुमार को अपने घर पर आमंत्रित किया और आवभगत की।

कनकलता ने अपने पत्र में सभी सखियों का कुशल क्षेम पूछा था और साथ ही साथ रतिसुंदरी के लिए लिखा था कि हे सखियों! उसे समझाओ कि वह राजकुमार से विवाह कर ले, पति से विहीन स्त्री उस वल्लरी के समान होती है, जिसमें फल नहीं लगता। उसे कोई आदर सत्कार नहीं मिलता। लोग उसको पाँवों से ठोकर मारकर ठेलते हैं। सबसे श्रेष्ठ मंडप कन्या के विवाह का होता है और दाखों में सर्वश्रेष्ठ श्वेत दाख (किशमिश) होती है। बगीचे में लगा आडू का फल मीठा होता है और आम की फसल श्रेष्ठ होती है –

"मोटो मंडप मांडहो, धोली किसमिस दाष।

वाडू मीठी वाग में, सषरी आंबा साष।।"[31]

आगे लिखती है हे सखियों! आप लोग राजकुमारी को समझा कर, कोई उपाय कर उसका विवाह कराओ। पृथ्वी के सौन्दर्य चित्तौड़ दुर्ग का स्वामी राजा महाराजाओं में मुकुट रूप सर्वशक्तिमान राजा करण का यह वीर पुत्र राजकुमारी के योग्य सर्वोत्तम जोड़ी है। राजकुमारी को सखियों ने राजकुमार खुम्माण के बारे में बताया। राजकुमारी ने विचार करके अपने सखियों को इस बारे में बताया। राजकुमारी ने विचार करके अपने सखियों से कहा वह राजकुमार से मिलना चाहती है। एक-दूसरे से मिलने के बाद दोनों में प्रेम हो जाता है। कवि लिखता है कि ये लालची नेत्र प्रीति के संयोग की लगन लगा देते हैं। इन्हीं नयनों के संयोग से चतुर मनुष्य अपरिचित लोगों से भी मेल कर लेते हैं –

"लगण करें लोभी लोयण, प्रेम प्रीत संयोग।

अण मिलियां सूं ही मिले, सयणां नयण संजोग।।"[32]

नैनों की चतुरता का वर्णन रीतिकाल में भी दिखाई देता है। कविवर बिहारी ने भी लिखा है –

"कहत, नटत, रीझत, खीझत, लजियात।

भरे भौंने में करत हैं, नैननु ही सौ बात।।"[33]

अर्थात् ये नैन भरे भवन में भी बातें कर लेते हैं। ये मिलते हैं, एक दूसरे से शरारत करते हैं और शर्माते भी हैं अर्थात् सारी बातें नेत्रों के माध्यम से ही हो जाती है।

कनकलता के लिए सखियों ने संदेश रूप में पत्र लिखा। हे सखी! सब एक ही देश में निवास करेंगे। जैसा तुमने लिखा है, हमने वैसा ही किया है। राजकुमारी (राजकुमार खुम्माण से) विवाह करेगी। राजकुमार से वचन लेकर स्त्रियों ने उस अवसर पर उसको विदा किया। दिल्ली से प्रस्थान करके राजकुमार सात दिन में अपने नगर चित्तौड़ लौट आया। उसके बाद राजकुमारी ने अपनी सखियों से इस विषय में मंत्री मतकेवास से बात करने को कहा। राजा जेत लमर और मंत्री मति के पास ने अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बात की। मंत्री कनकलता से पूछता है – कि हे कनकलता! तू बता तेरी बहिन का संबंध किस राजा के साथ करें। वह खुम्माण राजकुमार के बारे में बताती है। मंत्री ने यह सब राजा को बताया। राजा ने कमलराय (मतकेवास का पुत्र) को चित्तौड़गढ़ भेजा। श्रेष्ठतम राजा करण ने उनका स्वागत किया। वे पाँच-सात दिन चित्तौड़गढ़ में ठहरे और सभी स्वजन मन में बहुत प्रसन्न हुए, उसके बाद दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

शुभ मुहुर्त देखकर लग्नपत्रिका (राजा के सम्मुख) प्रस्तुत की गई और विवाह के रीति-रिवाज आरंभ हो गए। चारों ओर चँवर ढुलाए जा रहे थे, मालाएं पहनाई जा रही थीं, सिर पर मेघाडम्बर (राज-छत्र) सुशोभित था। खुम्माण के सिर पर सेहरा बंधा था – यह सब ऐसा लग रहा था, मानो पर्वत के ऊपर देवालय निर्मित किया गया हो। चित्तौड़गढ़ से बारात ने प्रस्थान किया और दिल्ली पहुँचे। बड़े

ही धूम-धाम से दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। प्रेम-पूर्वक गठ-जोड़ा बांधा गया और स्वस्तिवाचन किया गया, मांगलिक गीत गाये गए और वर-वधू ने यज्ञवेदी के परित चार परिक्रमाएँ की। चाँद और सूरज, तैंतीस कोटि देवताओं तथा उपस्थित स्त्री पुरुषों की साक्षी में उन्हें पति और पत्नी के रूप में स्वीकृति दी गई। जब रतिसुंदरी काम क्रीड़ा करने के लिए अपने प्रियतम के समीप सोलहों श्रृंगारों से सुसज्जित होकर आई तो उसके अंग-अंग में कामदेव (कामवासना का भाव) उमड़ आया। राजकुमार खुम्माण कामदेव के समान सुंदर और महान दाता, महा पराक्रमी और लक्ष्मीरूप राजकुमारी रति का पति था। राजा जेत ने राजकुमारी रति के देहेज में विनम्रता पूर्वक हीरे जवाहरात, बहुमूल्य वस्त्र और करोड़ो के मूल्य की धन-सम्पत्ति, स्वर्ण और गर्जन करते हाथी तथा हिनहिनाते घोड़े दिये। दिल्ली पति जैतसी तोमर ने प्रेम-भाव प्रदर्शित करते हुए बारातियों को विदाई दी तथा अपनी पुत्री को सभी आवश्यक उपदेश देते हुए विदा किये।

दिल्ली से प्रस्थान करके वे चित्तौड़गढ़ पहुँचे। राजकुमार खुम्माण ने अपने पिता रावल करण के पाँव स्पर्श किये और रावण करण ने स्वागत किया। कुल गुरु और भगवान की पूजा अर्चना की गई। वर-वधू के मांगलिक सूत्र खोल कर अलग किए गए। उनका निवास इन्द्रमहल में किया गया। पाँचो सखियाँ परस्पर मिलीं। पाँचों सखियों ने एक दूसरे के साथ प्रीति की रीति का पालन करते हुए उसमें अत्यधिक वृद्धि की। इस प्रकार द्वितीय खण्ड समाप्त होता है।

तृतीय खण्ड आरम्भ करने से पहले दलपति आद्याशक्ति माँ की वन्दना करते हुए कहता है कि हे सरस्वती देवी! मुझको वर्णन करने की शक्ति और विद्या का दान दो।

राजकुमार खुम्माण छह महीनों तक अपनी पत्नी रतिसुंदरी के साथ कामवासना में लिप्त रहा। मानसरोवर में जिस प्रकार हंस, समुद्र में लक्ष्मी, चंदनवन में सर्प रमण करते हैं, उसी प्रकार खुम्माण रति सुंदरी के साथ रमण करता था –

"मानसरोवर हंसो, रमइ कमलेसु नीर पूरम्मि।

अहि रमइ चंदण वणे, रमेइ तह रन्ति खुम्माणो।।"[34]

क्षत्रिय जाति में शिरमौर खुम्माण गर्व करता हुआ मूंछों पर ताव देता था, कि किसी भी माता ने शक्ति में उसके समान किसी अन्य योद्धा को जन्म नहीं दिया है। दीवार पर जिसके भाव का चित्रांकन किया था, उस राजकुमारी रतिसुंदरी से मैंने भोग किया है और दिल्ली से इन सभी पाँच सहेलियों को भी मैं यहाँ ले आया हूँ। वीर पुरुष जो कुछ मन में विचार करता है– उसको निश्चय ही पूरा करता है। धिक्कार है उस स्त्री को जिसके मन में सोची विचारी गई बातें मन की मन में ही रह जावें और पूरी नहीं होने पावें। वह रतिसुंदरी को उलाहना देते हुए कहता है कि हे सुंदरी! तुमने प्रण किया था कि तुम्हारा पति वही शूरवीर राजा होगा जो गज-स्तंभ का वेध कर देगा। उस व्यक्ति का जन्म ही व्यर्थ है, जिसके मन में सोचे गये विचार मन में ही रह जावें। ऐसे नर-नारियों को भगवान ने व्यर्थ में ही जन्म दिया है। खुम्मान कहता है जो व्यक्ति स्वयं के द्वारा व्यक्त वचनों का पालन करता है, उसका जन्म लेना सार्थक है। जो अपने वचनों का निर्वहन नहीं कर सकता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है –

"बोल्या बोल निरव्वहें, जनम तास सु प्रमाण।

बोल निवाहें नवि सकें, जास जनम अप्रमाण।।"[35]

रानी रतिसुंदरी यह सोचकर चौंक उठी कि उसके पति ने उसको कटु वचन कहे हैं। यदि मैं राजा जेतसी की बेटी हूँ तो अवश्य ही अपने वचन को सत्य में परिणत करूँगी। अपनी आँखें लाल करते हुए राजकुमारी रतिसुंदरी ने कहा– हे स्वामी! आप ऐसी बुरी बात कैसे कह रहे हैं? स्त्री के नयनों ने मनुष्यों, देवताओं, नाग आदि सभी वर्गों के प्राणियों को परास्त किया है। दुश्शासन जैसे दानव और महान से महान तपस्वियों तक को विभ्रमित किया है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवगण भी स्त्री के चरित्र के सामने चक्कर काटते रहते हैं। हे रावल करण के पुत्र खुम्माण! यदि आप उनकी बराबरी कर सकते हैं तो परीक्षा कर लो। अपने मन में अपने साहसिक कार्यों के प्रति उत्साहित होकर राजकुमार खुम्माण ने रूष्ट होकर कहा, 'हे सुंदरी! मैंने तुम्हारी प्रतिज्ञा के रूप में कहे गये वचनों के लिए तुम्हारा परित्याग कर दिया है।'

स्त्री को बाल्यावस्था में ही त्याग दिया। उनमें प्रेम का प्रवेश तक नहीं हो पाया। राजकुमारी रति-सुंदरी को कमल सरोवर पर स्थित एक आवास-निवास के लिए दिया गया। रतिसुंदरी ने तत्काल चारों सखियों को बुलाया और कहा– हे बहिनों! राजकुमार खुम्माण रूठ गए हैं। बात ही बात में विवाद में हो गया और मेरे पतिदेव मर्यादाहीन होकर क्रुद्ध हो गये हैं। आप लोग मुझे कोई उपाय बताइए। सखियाँ कहती है कि तुम बिल्कुल चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पति को तुम्हारा सेवक बना दूँगी। कनकलता और कमलावती दोनों ही गुणवान हैं। हे सखी! हम तुम्हारे लिए राजकुमार को छलेंगी। त्रिया चरित्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है जो मेढ़क की आवाज से भी डरती है वे सिंह के कंठ में बाहे डाल देती है, जो कुण्डी भर पानी में डूब जाती है, वे ही नदी में बहते अगाध पानी में भी तैर लेती हैं, वे ही पहाड़ को सिर पर उठा कर एक ओर रख सकती है, चूहे को देखकर जो कांपने लगती है, वे ही हाथी को पकड़कर धरती पर पछाड़ देती है, जो रस्सी को देखकर (सर्प के संदेह से) कांप उठती है, वे ही सर्पों को शरीर में लपटे रहती है। कविराज वीहल कहता है कि त्रिया-चरित्र का कोई पार नहीं पा सकता।

"डरपें दादुर सद्ध, बांह घालें केहरी गल।

बूड़े कुंडे नीर, तरहि नदी मां अथग जल।।

मरें फूल केंचार, सीस धर परबक टालें।

कंपें उंदर पेष, पकड़ घर कुंजर रालें।।

सींदरी देष दरषें सदा, विसर कूं विलग्गहे।

बीहल सुकवी जंपे वयण, तीय चरित्त न को लहें।।"[36]

कवि कहता है कि शीत, स्त्रियों और पानी, तीनों का स्वभाव एक-सा है। ये अपने से उत्कृष्ट स्तर वालों को छोड़ कर अपने से निम्न स्तर वालों से अनुराग रखते हैं। शीत का प्रभाव अमीरों पर नहीं, गरीबों पर पड़ता है, स्त्रियाँ कमजोर पति को ही पसंद करती हैं और पानी भी मेघों या पर्वतों को छोड़ कर नीचे की ओर गिरता है। कवि ने स्त्रियों की भर्त्सना करते हुए उन्हें कुलटा, आवारा, धूर्त बहुत कुछ

कहा है। आगे कवि कहता है स्वार्थ होने पर स्त्री सती के समान सुंदर होती है। कुपित हो जाने पर व्याघ्री के समान भयंकर हो जाती है। अपने वचनों से विश्वास में लेकर वह बिना पाश के ही मनुष्य को फंदे में जकड़ लेती है। इस प्रकार कवि ने त्रिया चरित्र के बारे में बताया है। उसके बाद उत्तम कुल की स्त्रियाँ जैसे – सीता, कौशल्या, मंदोदरी, गौरी, लक्ष्मी, गांधारी, द्रौपदी आदि का वर्णन किया है। आगे वे कहते हैं जिसके नाम प्रातःकाल स्मरण किए जाते हैं वे सच्ची माताएँ कही जाती हैं।

राजकुमारी ने कायस्थ कालिदास, चित्रकार और मालाकार को बुलाकर कहा कि आप ही लोग मेरे पीहर के पक्षधर हैं। आप लोग कुछ ऐसा उपाय करें कि जिससे अपनी बात सर्वोपरि रहे। सबने राजकुमारी के आदेशानुसार काम किया। भूमि खोदने वालों को बुलवाया गया और महिलाओं के षड्यंत्र के अनुसार सुरंग खोदी गई। सरोवर का निर्माण कराया गया। उस सरोवर पर बादल-गिरी मंदिर का निर्माण करवाया गया। सरोवर के अगाध जल में चारों ओर चार गुणे बड़े सोलह मंदिर बनवाये। चारों ओर चार द्वार और सीढ़ियाँ निर्मित कराई तथा पानी के अनुमान से पुल बाँधा गया। रत्नों से जड़ित सिंहासन, हीरे जड़े विशुद्ध सोने से निर्मित पाट, मणि माणिक जटित आंगन और मोतियों से मण्डित जालियाँ, सुंदर कमरे और चित्रशालाएँ बनवायी गईं। प्रतिदिन वहाँ नाटक तथा गायन होता, वादन का भी आयोजन किया जाता था। उन पाँचों ही चतुर सहेलियों ने इस प्रकार के षड्यंत्र को रचा था। उनके नृत्य संगीत से युक्त उत्सव ने देवों और मानवों को प्रसन्न कर दिया। चतुर चितारण ने कहा – हे रतिसुंदरी! मैं तेरे स्वाभिमान का रक्षा करूँगी और उस छैले वीर को तुम्हारे सम्मुख लाकर उपस्थित कर दूँगी।

कनकलता ने योगिनी का स्वरूप धारण करके धूनी लगाई। समस्त प्रजा योगिनी के दर्शन, पूजा, स्पर्श और जोत देने के लिए आने लगी। वे लोग प्रसिद्ध योगिनी की वंदना करते थे। गर्विता योगिनी की सूरत संसार को अपनी ओर आकर्षित करने वाली थी। उसने राजाओं-महाराजाओं को मोह लिया। कुमार खुम्माण ने उसे झुककर प्रणाम किया। उसके निष्कपट भाव से प्रभावित होकर खुम्माण के मन में योगिनी की परिचय प्राप्त करने की अभिलाषा हुई। योगिनी ने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह पाताल लोक में वासुकी नाग की कन्या के समीप रहती है तथा रूष्ट होकर पाताललोक से एक माह के

लिए यहाँ आई है। अब उसे लौट जाना है। खुम्माण ने उससे कुछ दिन और रूक जाने का निवेदन किया। योगिनी ने जब उसकी अभ्यर्थता स्वीकार नहीं की तो खुम्माण ने उससे पाताल लोक के दर्शन कराने हेतु प्रार्थना की –

"षुम्माण् कुअर आगल षड़ो, अरज सुणो आयस्सणी।

मन सुद्ध महिर मोसूं करो, भुयं पाताल दिषावणी।।"[37]

खुम्माण ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि यदि योगिनी उसको पाताल लोक में स्थित देवभवन का दर्शन नहीं कराएँगी तो वह अन्न-जल का त्याग कर देगा। योगिनी ने खुम्माण की भक्ति और स्नेह के वशीभूत होकर अंततः उसकी बात मान ली और उसकी इच्छा के अनुसार तीसरे दिन पाताल लोक में ले जाने का वचन दिया। अंततः खुम्माण की आँखों पर पट्टी बाँधकर वह उसे पाताल लोक में स्थित योगेश्वरी के मंदिर में ले गई।

खुम्माण की आँखों से जब पट्टी हटाई गई तो योगेश्वरी के रूप-सौन्दर्य से उसकी आँखें चौधियाँ गईं।

"षाटो चष थी परतो कियो। ज्योति महिल नयणें निरणियो।

ऊगा जाणें सूरज कोड़। नयणां नयण सकें न जोड़।।"[38]

वह योगेश्वरी पर मुग्ध होकर उसके साथ विवाह करने की अभिलाषा करने लगा। योगिनी ने उसको समझाने का प्रयत्न किया कि वह मलधारी मानव है और योगेश्वरी नागराज वासुकी की पुत्री। उन लोगों में वैवाहिक संबंध अनुपयुक्त हैं। यदि वह हाथ में लोह-कुंत लेकर एक ही प्रहार में गजखंभ का वेध कर दे तो वह उसका विवाह नाग कन्या से करा सकती है। खुम्माण ने इसमें अपनी हीनता समझी और गजखंभ वेध करके अपनी शक्ति का परिचय देना चाहा। योगिनी ने भी उसको ऐसा करने के लिए प्रेरित किया और वचन दिया कि यदि वह ऐसा कर देगा तो वह भी योगेश्वरी नाग कन्या के साथ

उसका विवाह करा देगी। खुम्माण ने तत्काल हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया, जहाँ इस प्रकार गजखंभ बना हुआ था। अपनी एक हजार सखियों के साथ रतिसुंदरी भी वहाँ गई। खुम्माण ने अपनी सांग से क्षणभर में ही गजखंभ का वेध करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। योगिनी ने भी आठवें दिन नाग कन्या से विवाह कराने का वचन दिया। तद्नुसार चित्तौड़ पहुँच कर योगिनी ने रतिसुंदरी को विवर में स्थित प्रासाद में पहुँचा दिया। आठवें दिन युक्तिपूर्वक खुम्माण की आँखों पर पट्टी बाँधकर वह उसको विवर में ले गई और नाग कन्या के वेश में रतिसुंदरी के साथ विवाह रचा कर उन्हें इन्द्रमहल के लिए विदा किया। पत्नी ने जब खुम्माण कुमार की आँखों से रतिसुंदरी के रूप को देखा। उत्तमगुणों से युक्त कुमार ने मन में विचार किया कि इस वीरांगना ने मुझे कपट लिया। यह अबला नहीं सचमुच में ही सबला नारी है। इसने अपने कहे हुए वचन का पालन किया है। स्त्री-चरित्र की कोई सीमा नहीं होती– वह सीमातीत होता है। हे ज्ञानी पण्डितों! स्त्री के चरित्र का पार पाने की कभी चेष्टा मत करना –

"अबला सबला साची एह। पाल्यो बोल कह्यो जे तेह।।

कामनि चरित्र तणो नहि पार। अंत न लीजे विदुर विचार।।"[39]

अब खुम्माण रतिसुंदरी पर और भी अधिक अनुरक्त रहने लगा।

एक बार राजकुमार खुम्माण आखेट करता हुआ अपने साथियों से बिछुड़ कर अपने एक साथी लोहजंग के साथ नलवर नगर के समीप जंगल में जा पहुँचा। रात हो जाने के कारण वह वहीं ठहर गया और लोहजंग को विश्राम हेतु आवास की खोज में नलवर नगर में भेजा। लोहजंग नहर के बाहर एक ऐसे महल में जा पहुँचा, जहाँ लाखां नाम की एक रूपसुंदरी युवती रहती थी। लोहजंग ने युवती से राजकुमार खुम्माण को महल में ठहराने का निवेदन किया। युवती से स्वीकृति लेकर वह खुम्माण को महल में ले आया। लाखां ने उसका स्वागत सत्कार करके स्नान शृंगार करवाया। भोजन करवाकर दोनों राग रंग में लीन हो गए।

नलवर नगर में रहने वाले भीमक नाम के श्रेष्ठि की पुत्री तिलोत्तमा अनुपम और भेदज्ञ थी। वह बहुत ही सुन्दर थी। तिलोत्तमा का विवाह चंपकदत्त नामक व्यापारी से हुआ था। चंपक की गृहस्थी में

उसकी पत्नी तिलोत्तमा किशोरावस्था में चन्द्रमा के समान सुंदर स्वरूप वाली और गंगा के समान धीर गंभीर प्रकृति वाली थी –

"चंपक धर चंदाननी, नारि अनोपम रंगे।

लधवी-वेश तिलोत्तमा, गहिर धीर गुण गंग।।"[40]

एक दिन सत्तर करोड़ का पर्याप्त मात्रा में किराने का सामान वाहनों में भर कर धनपति सेठ भीमक के चतुर बेटे चंपक ने बंदरगाह के लिए प्रस्थान किया। अपने माता-पिता से विदाई लेने के पश्चात् वह पत्नी के पास आया। पत्नी बारह मास का वर्णन करती हुई कहती है कि स्वामी आपके बिन पूरा वर्ष बीतना बड़ा ही मुश्किल है। अतः आप मुझे अकेले छोड़कर मत जाइए। आगे विस्तारपूर्वक बारह महीनों का वर्णन कवि ने किया है। पत्नी कहती है- हे प्रिय अग्रहायन (मार्गशीर्ष) आ गया है। भले आदमी शीत ऋतु में अपनी पत्नी को छोड़कर नहीं जाते-

"आवियो आधण मास इहवो, सीय चमकित चिहुं वला।"[41]

फिर कहती है कि पौष के महीने में दक्षिण दिशा में हवा की ठण्डी लहरें चलती हैं। हे पति देव इस ऋतु में अपनी सुंदरी स्त्री को अकेली छोड़ कर मत जाओ।

"पोस मासे पवन सीतल, लहिरे वज्जे लंक थी।"[42]

आगे वह कहती है माघ के महीने में पानी जमकर बर्फ बन जाता है। समस्त वनस्पतियाँ दाह-ग्रस्त होकर जल जाती हैं। ऐसी स्थिति में प्रिया अपने प्रिय के बिना कैसे रह सकती है –

"माह मासें हिमजल जमें, दाझें सब वनराय।

ससनेही साहिब बिना, क्यूं कर रहियो जाय।।"[43]

फाल्गुन के महीने में वायु उमड़-उमड़ कर फौजों की भाँति चलती है। हे प्रिय! हम भी मौजमस्ती करे।

"फरहरें फागुन पवन फोजां, कंत मोजां कीजीई।"[44]

फिर चैत्र महीने का जिक्र करती हुई कहती है– हे प्रिय! चैत्र के महीने में समस्त वनस्पतियाँ विकसित होकर खिल उठी हैं। कोयलें ऊँचे स्वर में बोलती हैं। अतः विरह की वृद्धि हो जाती है और वह शरीर में समा नहीं पाता है –

"चतुर महीनें चेतरे, विकसी सहु वनराय।

कोयल करें टिहुक्कड़ा, विरह घटें ने समाय।।"[45]

हे प्रिय! वैशाख महीने में अपनी पत्नी को छोड़कर आप विदेश के लिए गमन न करें –

"वैशाषें वनिता तजी, मत चालो परदेश।।"[46]

जेठ के महीने के बारे में कहती है अपनी रक्ताभ किरणों के साथ सुरज तप रहा है। जेठ के महीने में लू की लपटों की झड़ी लगी हुई हैं। ऐसे समय में चंदन के समान चंद्रमुखी पत्नी के साथ अपना प्रगाढ़ स्नेह बनाए रखें।

"अरुण किरण सूरज तपें, लू झड़ जेठ लपट्ट।

चंद-मुषी चंदन थकी, राषो नेह निपट्ट।।"[47]

आगे वह कहती है हे स्वामी! आप प्रेम में विघ्न न डालें। परदेश के लिए प्रस्थान न करें। आषाढ़ के महीने में उमड़ घुमड़कर बादल मंडरा रहे हैं और यह बाला अपनी किशोरावस्था में है –

"कंत नेह म करो कजी, मत चालो परदेश।

आषाढ़े घन उन्नहयो, बाला बालक वेश।।"[48]

श्रावण के महीने में घनघोर घटाएँ भयंकर वर्षा की झड़ी लगाती हैं। समस्त पृथ्वी और पर्वत हरे-भरे हो गए हैं, पर विरह से व्यथित व्यक्तियों की क्या गति है?

"श्रावण घोर घया सझें, धरहर बरसे धार।

हरिया धर गिरिआ हुआ, विरती कवण विचार।।"[49]

भादों के महीने में बादल पूर्ण रूप से बरसने लगे पानी कलकल ध्वनि के साथ बहने लगा। चमचमाट करती बिजलियों का आग विरहिणी नारी के शरीर को जलाती है –

"भर भाद्रव झड़ मंडियो, षलहल षलक्या नीर।

विरहणी पावक वीजुआ, सुंदर दहें सरीर।।"[50]

स्त्रियों की अभिलाषाओं से आकर्षित होने वाला आश्विन का महीना आ गया। समुद्रों के पानी में मोती उत्पन्न हो गए। इसमें सभी अभिलाषायें पूरी हो जाती हैं। अतः हे प्रियतम! आप अपनी पत्नी को अकेला छोडकर न जाएँ–

"अबला आसा लूधियां, आयो आसो मास।

जल समुदां मोती जम्या, सफल फलें सहु आस।।"[51]

कार्तिक के महीने में स्त्रियों के हृदय में विरह रूपी धनुष से छोड़े गये बाण आघात करते हैं। जिनके प्रिय विदेश में बसे हुए हैं, और वे विरह रूपी सांकल से जकड़ कर बंधी हुई हैं –

"काती विरह कबाण रा, लिय उर लग्गे तीर।

पिउ जिण रा परदेशडे, जकड़ि विरह जंजीर।।"[52]

अंततः पत्नी अपने पति को विदाई देती है और उसका पति विदेश के लिए प्रस्थान करता है।

मध्यकाल में जायसी ने भी इस परंपरा का निर्वाह किया है और नागमति वियोग खण्ड में बारहमासा विरह का वर्णन किया है –

"अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई।

मोहिं बिन पिउ को आदर देई?

सावन बरस मेह अति पानी।

भरनि परी, हौं विरह झुरानी।।

भा परगास काँस बन फूले।

कंत न फिरे, विदेसहि भूले।।

कातिक सरद चंद उजियारी।

जग सीतल हौं विरहै जारी।।

टप-टप बूँद परहि, औ ओला।

विरह पवन होइ, मारै झोला।।

तरिवर झरहिं, झरहि बन-ढाखा।

बई ओनंत फूलि फरि साखा।।

बौरे आम फरै अब लागे।

अबहुँ आउ घर, कंत सभागे।"[53]

पति के विदेश चले जाने पर नायिका विरह से व्यथित हो जाती है और उसका एक-एक दिन बहुत ही मुश्किल से बीतता है। वह कहती है प्रियतम के बिना एक-एक घड़ी प्रहर से भी अधिक, एक क्षण भी प्रहर के समान और प्रहर दिन के समान बीत रहा है। दिन एक महीने के बराबर और एक मास तो बहुत ही कठिनाई से बीतता है –

"घडिया पहरेण पहरं, पलं पहरं (अ) पी दिवस ओ जाओ।

दिवस मास बरोबरं, मासोपी दुल्लहो जाओ।"[54]

चंपक के चले जाने पर उसकी प्रियतमा को बीस दिन भी दो वर्षों के समान लगते हैं।

चैत्र के महीने में शुक्ल पक्ष में तृतीया के दिन जवान स्त्रियाँ क्रीड़ा करती हैं। इस अवसर पर उनके प्रियतम उमंग के साथ चल कर आते हैं और अपनी प्रियतमा पत्नियों के साथ रति रस का आनंद लेते हैं। इसे राजस्थान के निवासी एक पर्व के रूप में मनाते हैं जिसे गणगौर कहते हैं। गणगौर व्रत में शिव और पार्वती की पूजा की जाती है। इस पर्व में कुँवारी कन्याएँ मनपसंद वर प्राप्ति की तथा विवाहित स्त्रियाँ अपने अखण्ड सौभाग्य की कामना करती हैं। परन्तु पति के वियोग में तिलोत्तमा का शरीर विरह की अग्नि में जला जा रहा था। तिलोत्तमा ने सखी की सम्मति के अनुसार कुहिनी महलू को बुलाकर ऐसे रसिक पुरुष का पता लगाने हेतु कहा। महलू ने लाखां के महल में ऐसे तेजस्वी पुरुष की उपस्थिति की जानकारी दी। कुहिनी के वचन सुनकर तिलोत्तमा ने लाखां के यहाँ जाने का निश्चय किया। उसने अपने पीहर में रात्रि जागरण में सम्मिलित होने का बहाना बनाकर सास से पीहर जाने हेतु रातभर की अनुमति प्राप्त की। अपने महल में आकर उसने पूर्ण शृंगार किया। हजारों रुपयों के इत्रादिक सुगन्धित पदार्थ, पान-फूल और पकवान आदि खरीदे और मालिणी के साथ लाखां के महल के लिए प्रस्थान किया। तिलोत्तमा प्रेम पूर्वक लाखां के घर पहुँची। चित्तौड़ के राजकुमार खुम्माण ने उसके

शरीर की कांति को देखा और सोचा कि संसार में इसके समान सुंदर और कोई नारी नहीं है। यह मन्मय की पत्नी रति है, या स्वर्ग की अप्सरा रंभा या उर्वशी है। खुम्माण के मन में विकार या आकर्षण उत्पन्न हो गया कि इसने तो मेरे मन में स्थान बना लिया है–

"देषी वाणक देह, के चित्रागढ़ राजवी।

सुंदर इण संसार, नहीं छें एहवीं।।

एही रती के रंभ, के नभ री उरवसी।

षयूच्यो मन षुंमाण, के हें मुझ मन वसी।।"[55]

यदि भगवान मुझ पर कृपा करें तो इस नारी के साथ मेरा संयोग हो। इस स्त्री के सौन्दर्य और तेज को देख कर चन्द्रमा भी भ्रम में पड़ जाता है। मेरे निवास स्थान पर यह रसिक महिला अतिथि के रूप में आईं। दोनों ने एक दूसरे को हाथ से तांबूल वीटिका भेंट की और प्रथम मिलन में ही उनमें प्रगाढ़ अनुराग हो गया। लाखां ने भी कुमार खुम्माण से कुछ दिन और ठहरने का आग्रह किया पर लाखां को भी समझाकर खुम्माण चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि वे एक दूसरे से पृथक नहीं होंगे। धींगा गणगौर पर पुनः आने का वचन देकर खुम्माण चित्तौड़ लौट आया। धींगागौर के नाम को खुम्माण कभी नहीं भूलता था। चित्तौड़ में आकर वह विक्षिप्त-सा हो गया और हर क्षण धींगा गणगौर की रट लगाने लगा। उसकी यह अवस्था देखकर रतिसुंदरी और उसकी सहेलियाँ भी चिन्तित हो उठीं। उन्होंने रावल करण को खुम्माण की इस स्थिति की जानकारी दी। रावल करण ने जंत्र-मंत्र, जपजाप कराए, ज्योतिषियों और वैद्यों का भी सहयोग लिया पर सब व्यर्थ है। सभी निराश हो गए।

रतिसुंदरी दुर्गा माता के सामने जाकर एकान्त में निवेदन करने लगी – मेरा मान सम्मान संकट में हैं, किसी प्रकार मेरे स्वामी को स्वस्थ करो –

"सगत थकी हुई सांमुही, अरज करें एकंत।

मांहरो अबके माननी, किण विध साजो कंत।।"[56]

रति सुंदरी ने एकांत में दुर्गामाता से खुम्माण को स्वस्थ करने की प्रार्थना की। अकस्मात् आकाशवाणी हुई की खुम्माण विरह व्यथा से पीड़ित है। समस्त घटना की जानकारी लोहजंग को है। उसको विश्वास में लेकर प्रियतम की बात पूछो। लोहजंग से जब पूछा गया तो उसने बताया कि राजकुमार नलवरगढ़ की सुंदर स्त्रियों के मोहपाश में बँध गया है। राजकुमार ने उनसे धींगा गणगौर के पर्व पर वहाँ पहुँचने का वादा किया है। उसी की याद में वह मुरझा गया है और बड़बड़ाता रहता है। रतिसुंदरी ने रावल करण से निवेदन किया कि हमारी आप से एक प्रार्थना है – आप राजकुमार के शरीर में शक्ति लाने के लिए धींगा गणगौर के पर्व का आयोजन बंद कर दें –

"अरज करें अधिपत्त सूं। अमची ए अरदास।

गवर धींग मेटज करो, कुंअरर सरीर करार।।"[57]

राजा ने चित्तौड़ में धींगा गणगौर का त्योहार बन्द कर दिया। इधर नरवर दुर्ग की दोनों रमणियाँ विरहातुर होकर तड़फड़ा रही थीं कि कुमार कार्तिकेय के समान वीर हमारे स्वामी खुम्माण सिंह कब आयेंगे?

तिलोत्तमा शुक के द्वारा खुम्माण को संदेश भेजती है। वह कहती है जिस प्रकार बछड़ा गाय को याद करता है और कोयल वसंत ऋतु को स्मरण करती है, गजश्रेष्ठ विन्ध्याचल को याद करता है, उसी प्रकार हमारा मन आपका स्मरण करता है –

"जह सरइ सुरहिवच्छो, वसंत मासं च कोयला सरइ।

विज्झ सरइ गयंदो, तह अम्हमणं तुमं सरइ।।"[58]

तिलोत्तमा का संदेश पाकर खुम्माण अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसके स्वास्थ्य में भी सुधार हो गया। एक दिन रतिसुंदरी आदि को छोड़कर वह नलवरगढ़ जा पहुँचा। उधर तिलोत्तमा ने राजकुमार खुम्माण के स्वागत की भीम बगीचे में भव्य साजसज्जा करके प्रतीक्षा की। खुम्माण विरहोन्माद में संकेत स्थल की बात भूल गया और तिलोत्तमा के आवास पर जा पहुँचा। रातभर वे एक दूसरे की प्रतीक्षा करते रहे। सूर्योदय होने से पूर्व ही निराश तिलोत्तमा घर के लिए चल पड़ी और खुम्माण ने भीम बगीचे की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में दोनों ही एक दूसरे के पार्श्व में होकर निकलने पर भी विरहोन्माद में एक दूसरे को पहचान नहीं पाए। भीम बगीचे में पहुँचकर संकेत गृह में तिलोत्तमा को न पाकर वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। उद्यान के रक्षक माली ने इसकी सूचना नलवरगढ़ के राजा को दी। नगर के नर-नारियों की अपार भीड़ बगीचे में एकत्र हो गई। नलवर नरेश को किसी ने बताया कि यह अवस्था प्रेम संबंध में निराश व्यक्ति की है। राजा ने प्रेमिका का पता लगाने के लिए भीम बगीचे में शिव मंदिर में सोमवार को मेले का आयोजन करके नगर के नर-नारियों को उसने सम्मिलित होने की घोषणा करवायी।

सोमवार के दिन नलवर की स्त्रियाँ गाती-बजाती शिव मंदिर में पहुँचने लगी। तिलोत्तमा की जेठानियों ने तिलोत्तमा को प्रेम-प्रसंग में निराश हुए राज-पुरुष के मूर्छित होने की सूचना देकर तमाशा देखने के लिए भीम बगीचे में चलने हेतु जगाया। तिलोत्तमा को संदेह हो गया कि वह राजकुमार खुम्माण ही है, जिसकी मेरे कारण यह दशा हुई है। आत्मग्लानि से ग्रस्त तिलोत्तमा आत्महत्या का दृढ़-निश्चय कर अपने साथ तलवार लेकर पूजा की सामग्री सहित शिव मंदिर में पहुँची। अपने प्रिय को मूर्छित पड़ा देख उसने अपना मस्तक काटकर शिवजी को अर्पित करने का निश्चय किया। उधर गुप्त आकाशवाणी हुई कि शिव और पार्वती द्वारा दिए जा रहे अमृत-कलश से वह अपने प्रेमी पर गुप्त रूप से अमृत का छिड़काव करे– वह जीवित हो उठेगा। तिलोत्तमा ने वैसा ही किया और राजकुमार जीवित हो उठा। तिलोत्तमा को सामने खड़ी देख कर वह प्रसन्न हुआ। नलवर नरेश ने उसका परिचय प्राप्त किया। उसको प्रसन्नता हुई कि वह व्यक्ति चित्तौड़ के रावल करण का राजकुमार खुम्माण है। राजा उसे अपने राजमहलों में ले गया और अपनी राजकुमारी का उसके साथ विवाह कर दिया। प्रियतम और उसकी प्रेमिका दोनों का मिलन हुआ। उनके शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग उल्लसित (आनन्दित) हो उठे और वर-

वधू पर प्रेम का रंग दो गुना चढ़ गया। शुभ गुणों से युक्त प्रेमी खुम्माण प्रेमिका तिलोत्तमा से मिला। उनके मिलन का एक-एक पल प्रहर के समान था–

"उलसीआ आठें ही अंग। दुलहा दुलही दूणा रंग।।

लाषीणी पल पिहर प्रमांण। साहिब मिलियो सुगण सुजाण।।"[59]

इस प्रकार तृतीय खण्ड समाप्त होता है।

चतुर्थ खण्ड में कवि देवी दुर्गा! पार्वती! की वन्दना करते हुए कहता है कि 'हे माता जिस प्रकार वसन्त ऋतु में कोयल का मधुर स्वर आम्र वृक्ष की मंजरी के गुण से प्राप्त होता है। उसी प्रकार हे माता! दलपति विजय जिन अक्षरों (ज्ञान) का लेखन कर रहा है, वह सब आपकी ही कृपा का फल है'–

"मास वसंत पिक मधुर सुर, सो गुण कलि सहकार।

आषर दलियो ऊचरें, सो आई तो उयगार।।"[60]

जिस प्रकार भ्रमर अपनी मालती प्रिया पर ह्रदय से आकर्षित होता है, अथवा कामदेव रति पर विमोहित रहता है, उसी प्रकार खुम्माण कुमार सुंदरी तिलोत्तमा में आसक्त था। खुम्माण चित्तौड़ नगर की स्मृति भूला बैठा था। उधर रतिसुंदरी विरह में संतप्त रहने लगी। प्रियतम के लौटकर न आने पर उसने प्रिय के पास संदेश भेजना चाहा। उसने मैना के पंखों पर अपनी विरहावस्था का वर्णन लिखा और मैना खुम्माण के पास पहुँची और प्रणाम करके पत्र दिया, मैंना ने कहा – मैं आपको बुलाने के लिए आई हूँ। काम रस की लोभी रतिसुंदरी विरह व्यवस्था से पीड़ित होकर कृशकाय हो रही है। वियोग के मार्ग पर चलती हुई आपकी प्रतीक्षा कर रही है। मैना की बातें सुनकर खुम्माण का मन चित्तौड़ जाने के लिए चंचल हो उठा परंतु तिलोत्तमा ने उसे रोक लिया। तब रतिसुंदरी ने कुरझां पक्षी को अपना दूत मानकर उसके माध्यम से दूसरा संदेश भेजा। रतिसुंदरी कहती है 'हे कुरजाँ (क्रौंच पक्षी)! तुम मुझको अपने पंख

दे दो। मैं तुम्हारा आभार मानूँगी। तुम्हारे पंखों की सहायता से पर्वतों को पार करके मैं अपने प्रयितम से मिलूँगी और उनको मेरी सुगंध प्रदान करूँगी' –

"कुरझां द्यो मुझ पंखड़ी, गिणसू थां उपगार।

परबत लंघी पिक मिलां, द्यूं परिमल भरतार।"[51]

फिर भी खुम्माण लौटकर नहीं आया। अंत में उसने अपनी सखियों से सहयोग लिया। फसने दोहों में अपने पति के प्रति संदेश लिखा और अपनी चारों सखियों को बुलाकर उन्हें वे दोहे पढ़ाए। उनसे निवेदन किया कि वे इन दोहों का गंभीर राग छोड़कर गायन करें। नृत्य, गायन और अभिनय कर उसके पति को प्रसन्न करके घर पर लौटा लावें। सखियों ने प्रेमपूर्वक दोहों को मल्हार राग में गाना सीखा। उन्होंने अपना रूप बदला। अपने साथ सुहावने स्वर में धनी गंभीर गुणों के भण्डार, गायक, गणीजनों को साथ में लिया। अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों और नर्तकियों को साथ लेकर, रथों और घोड़ों के साथ प्रस्थान किया। वे नलवर नगर में आई और बाग में अपना डेरा जमाया। उन्होंने ऊँची और मधुर तान ले-लेकर विरह संदेश गाया। उनकी कीर्ति नलवर नगर में व्याप्त हो गई। नलवर नरेश ने भी उनको बहुत सम्मान दिया। राजकुमार खुम्माण ने उनको उत्कंठापूर्वक तत्काल बुलाया। उन्होंने मारू राग में विशेष रूप से घंटो रागों के आलाप ले-लेकर विरह और वैराग्य के गीत सुनाए –

"माहिला मारू राग में, आलापें षट राग।

तीया गावें तान सूं, विरह अनें वेराग।।"[52]

दोहों को सुनकर राजकुमार ने चारों ही सखियों को पहचान लिया। उन्हें देखकर वह लज्जित हुआ और उन्हें चित्तौड़ लौटने का आश्वासन दिया।

खुम्माण ने नलवर नरेश से तत्काल विदाई मांगी। राजा ने दहेज में प्रभूत धन, वस्त्राभूषण आदि दिए। खुम्माण की इच्छानुसार उसने धनपति सेठ को पटाकर उसकी पुत्रवधु तिलोत्तमा को भी खुम्माण

के साथ चित्तौड़ भेज दिया। विदाई लेकर खुम्माण चित्तौड़ लौट आया। रतिसुंदरी अपने प्रियतम से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। रावल करण ने उसको सवाई की उपाधि दी। खुम्माण ने तिलोत्तमा, लाखा और कछवाही रानी के लिए महलों में पृथक-पृथक व्यवस्था की।

तिलोत्तमा जब लौटकर नलवर नहीं पहुँची तो धनदत्त ने दुःखी होकर राजा को उपालंभ दिया। राजा ने जब अपनी विवशता बताई तो खिन्न मन से धनदत्त अपने संबंधियों के साथ रावल करण के पास चित्तौड़ पहुँचा और खुम्माण के विरूद्ध शिकायत की। रावल करण ने खुम्माण को बहुत समझाया कि वह तिलोत्तमा को लौटा दे, पर वह इसके लिए तैयार नहीं हुआ। रावल करण ने अपने आदेश का उल्लंघन करने के आरोप में खुम्माण को निष्कासित कर दिया। वणिक सेठ धनपति निराश होकर लौट गया।

अपने परिवार, धन-संपत्ति, अस्त्र-शस्त्र और नौकर-चाकरों तथा तिलोत्तमा को साथ में लेकर वह एकलिंग जी चला गया और वहाँ पहुँच कर प्रसिद्ध एकलिंग महादेव की पूजा की। वन, पर्वत और झाड़ियों से पटी भूमि में उसने एक बहुत बड़ा नगर बसाया। सशक्त और श्रेष्ठ धरा को देखकर परमवीर खुम्माण ने खमणोर नगर की स्थापना की –

"वन गिरवर झींगर बहु विचें। वांको सहर वसायो तिसें।।

सबन ठोड देवें सिर जोर। षुमें वसावियो षमणोर।।"[63]

और खुम्माण उस नगर में सफलतापूर्वक शासन करता था। एक दिन सभी सामंतों ने रावल करण से निवेदन किया कि हे राजा! खुम्माण को आप क्षमा करें। रावल करण ने अपने पुरोहित, सांभर नरेश और मंत्री को स-सम्मान खुम्माण को लिवा आने के लिए भेजा। वे खुम्माण को मना कर चित्तौड़ ले आए। पिता-पुत्र परस्पर एक दूसरे के गले में बांहे डालकर मिले। जो कुछ भी दुःख और दुर्भाग्य की स्थिति थी वह सब दूर हो गई। रावल करण और राजकुमार खुम्माण दोनों ही चित्तौड़गढ़ में रहने लगे और रावल करण दुगुने उत्साह के साथ शासन करने लगा –

"बांह देई पितु सुत बिहुं मिल्या। दुष दोहग सहु दूरें टल्या।

करण षुंमाण रहें चीतोड़, राज करें नृप दूणें कोड़।"[64]

वणिक चंपक को जब ज्ञात हुआ कि राजकुमार खुम्माण ने उसकी पत्नी को अपने रनिवास में रख लिया है तो लज्जित होकर उसने नलवर लौटने का विचार त्याग दिया। वह सीधा गजनी के शाह के पास पहुँचा और रत्नाभूषणों की बहुमूल्य भेंट देकर सुल्तान मुहम्मदशाह को अपना दुःख-दर्द सुनाया। फरियाद सुनकर एक विशाल सेना लेकर शाह ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर दिया। रावल करण ने भी दुर्ग की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया और अनेक राजा-महाराजाओं का सहयोग लेकर युद्ध प्रारंभ कर दिया।

चित्तौड़ दुर्ग में उस समय जालोर का कान्हड़दे और उसका भतीजा कसामोड़ रहते थे। चित्तौड़ पर गजनी के शाह के आक्रमण को देख कर उसका रक्त उद्वेलित हो उठा। उसने युद्ध में कूद पड़ने का निश्चय किया। उसकी माता और नववधू ने उसको युद्ध से विरह करने का भरसक प्रयत्न किया, पर जब वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुई तो कसामोड़ की पत्नी देवल ने स्वयं अपने हाथ से उसको शस्त्रास्त्र धारण कराकर युद्ध में सम्मिलित होने को तैयार किया और स्वयं भी युद्ध में कूद पड़ी। वृद्ध कान्हड़दे भी रणभूमि में युद्ध के लिए चल पड़ा।

देवलदेव को युद्ध में संग्राम करते देखकर रतिसुंदरी और कछवाही रानियाँ ही नहीं, खुम्माण की प्रेमिका तिलोत्तमा और लाखा तथा रतिसुंदरी की चारों सखियों ने भी शस्त्रास्त्र धारण किए और रणभूमि में कूद पड़ीं। उनकी सहायता के लिए विभिन्न शक्ति स्वरूपा देवियों ने भी अदृष्ट रूप से शत्रुसंहार में चित्तौड़ की सेना को सहयोग दिया। भयंकर संग्राम हुआ। गजनी की समस्त सेना का सफाया हो गया। मुहम्मद शाह बन्दी बना लिया गया। कान्हड़दे वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी स्त्री सती हो गई।

रावल कर्ण ने वृद्ध हो जाने पर सन्यास ले लिया। अंतिम दिन काशी में बिताए। कसामोड़ और वीरमदे को युद्ध में सहयोग हेतु पुरस्कृत कर खुम्माण ने जालोर का राज्य पुनः उन्हें दिला दिया। खुम्माण के चार पुत्र हुए, जिनमें गोविन्द सबसे बड़ा था।

रावल खुम्माण के तप और तेज के प्रभाव के कारण सभी राजा उसकी आज्ञा का पालन करते थे।

दलपति विजय कहते हैं कि काव्य के भावों के अनुरूप कथन के साथ मैंने इस प्रशस्ति काव्य की गहन गंभीर संरचना की है, माँ दुर्गा ने चौपाई, दोहे और कवित्त छंदों में संरचना करने की बुद्धि दी। छंदों के भेद, युद्धों के वर्णन, नीति-वचन युक्त गाथाएँ और सुभावित वाक्य या शुभ संदेश एवं राजाओं के रहस्यों को जानने वाले ज्ञानी पंडित इसको पढ़ें। जय विजय के शिष्य बुद्धिमान शान्ति विजय दलपति विजय हाथ जोड़ कर कहते हैं कि 'खुम्माण चरित' को सुनने से वीर योद्धा विजय और धन सम्पत्ति की प्राप्ति करते हैं–

"गहिर गूंथि गुण ग्रंथ, कय कवीभाव विनीमय।

चोपी दुहा कवित्त, सगति ए कत्य उगत्तिय।।

छन्द भेद छल सयण, वयण गाहा सुह-वायक।

भेदागल भूपाल विदुर वांचें वेधालक।।

(जय) सीस शांति सुधिराज सुत, कर जोड़ी दलपति कहें।

षुम्मांण चरित सुणतो सुहड़, जय लच्छी जालिम लहें।।"[65]

यहाँ पर चतुर्थ खण्ड समाप्त होता है। तथा पंचम खण्ड आरम्भ होता है।

खुम्माण के वंशक्रम में गोविन्द, महडू, आलण शक्तिकुमार, सिंह और सारंग हुए। चित्तौड़ में रावल आलण का शासन था। एक बार पश्चिमी मारवाड़ से माइदान महियारिया नाम का एक चारण उसकी सभा में आया और आलण की कीर्ति का गान किया। इस पर प्रसन्न होकर आलणसी ने उसको

लाख पसाव सहित सिरोपाव दिया, पर पाघ नहीं दी। चारण ने पाघ के बिना सिरोपाव के महत्त्व को नकार दिया और पाघ न देने का कारण पूछा। आलण ने उससे कहा कि चारण हर किसी के सामने जाकर सिर नमाता है, जबकि हर किसी के सामने जाकर झुक नहीं सकता। चारण के द्वारा संकल्प सहित वचन देने पर कि वह उनके द्वारा दी गई पगड़ी को किसी के सम्मुख नहीं झुकाएगा, आलणसी ने उसको पगड़ी दे दी।

कुछ दिनों बाद चारण पाटण के राजा सिद्धराज जयसिंह की सभा में पहुँचा। उसने पाघ उतार कर राजा के सम्मुख अपना सिर झुकाया। जयसिंह चारण के इस अशिष्ट व्यवहार के कारण रूष्ट हुआ और चारण से इस प्रकार के व्यवहार का कारण पूछा। चारण ने स्पष्ट बता दिया कि यह पगड़ी चित्तौड़ के रावल आलणसी की है। सिद्धराज जयसिंह ने पगड़ी छीन कर चारण को उपालंभ दिया कि यदि आलणसी स्वयं आकर पगड़ी की रक्षा करें। चारण ने चित्तौड़ पहुँचकर रावल को सब कुछ बता दिया। इस पर आलणसी ने एक विशाल सेना लेकर जयसिंह पर चढ़ाई कर दी। भयंकर युद्ध हुआ। जयसिंह की माता ने आलणसी के सम्मुख उसकी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भिजवाया। विवाह कुशल पूर्वक स्पन्न हुआ। दोनों राजकुलों में पुनः स्नेह संबंध स्पन्न हुआ। दोनों राजकुलों में पुनः स्नेह संबंध स्थापित हो गए। जयसिंह ने माइदान महियारिया को आलणसी से निवेदन कर अपने कुल का चारण नियुक्त कर दिया और उसको लाख पसाव (एक लाख) सहित बारह गाँव शासन में दिए।

आलण के बाद चित्तौड़ में रावल समरसिंह का शासन था। उसका विवाह दिल्ली के चौहान नरेश पृथ्वीराज की बहिन से हुआ था। पृथ्वीराज ने छल-पूर्वक कन्नौज के राजा जयचंद की पुत्री संयोगिता से विवाह कर लिया और रात-दिन उसके साथ भोगविलास में रत रहने लगा। प्रजा को भी उसके दर्शन कुछ क्षणों के लिए छह मास में एक बार हो पाते थे।

एक बार समरसिंह तीज के पर्व पर अपने ससुराल दिल्ली गया हुआ था। चार महीनों तक उसने वहाँ निवास किया और जब लौटने का विचार किया तो पृथ्वीराज के रतिमंदिर में रत रहने के कारण बिना विदाई लिए वह वहाँ से प्रस्थान न कर सका। उसी समय में दिल्ली पर बादशाह ने आक्रमण कर दिया। दिल्ली से निकल पाने के सभी मार्ग अवरूद्ध हो गए। ऐसी स्थिति में समरसिंह ने अपने तेरह

हजार अश्वारोहियों के साथ युद्ध का वेश धारण कर रणभूमि में कूद पड़ने का निश्चय कर लिया। पृथ्वीराज के मंत्री ने उससे ऐसा न करने का निवेदन किया पर क्षात्रधर्म के कठोर आग्रह ने उसे युद्ध से विरत नहीं होने दिया। भयंकर युद्ध संग्राम हुआ। बादशाह पराजित हुआ और उसका पुत्र बंदी बना लिया गया। समरसिंह ने वीरगति प्राप्त की और उसकी चौहान कुल की रानी उसके साथ सती हो गई।

उसके बाद चित्तौड़ में रावल भीम ने गद्दी संभाली। उसका अनुज भारतसिंह अत्यन्त शक्ति सम्पन्न और निरंकुश योद्धा था उससे सभी सामन्त ईर्ष्या करते थे और भयग्रस्त रहते थे। एक बार रावल भीम के सरल स्वभाव का लाभ उठाकर उन सामंतों और मंत्रियों ने भारतसिंह को मरवा डालने का षड्यंत्र रचा।

उन्होंने रावल भीम की रानी से भारत सिंह के प्रति शिकायत की कि वह रावल भीम को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लेगा। अतः या तो उसका वध कर दें या उसे राज्य से बाहर निकाल दें। रानी ने रावल भीम को भारत सिंह के प्रति वैसा ही करने की सम्मति दी।

भारतसिंह की पत्नी ने अपने कानों से सुनी अपनी जेठानी की बात भारत सिंह से कही। भारत सिंह इससे चिन्तित हो उठा और प्राण-हानि के भय से गुप्त रूप से अकेला ही वहाँ से निकल कर रोमसाम के बादशाह के दरबार में पहुँच गया। बादशाह ने उसको पूरा सम्मान देकर उसका परिचय प्राप्त किया और अहरोड़ की जागीर देकर अपनी सेना में रख लिया। बादशाह के साथ उसका घनिष्ठ स्नेह-संबंध हो गया।

भारतसिंह ने करंजगढ़ की राजकुमारी से विवाह किया। उसकी राजसभा में असंख्य सामंत थे और उसके अधीन अपार सैन्य दल था।

रावल भीम ने जब अपने भाई को नहीं देखा तो उसे आशंका हो गई कि मेरा भाई या तो मार डाला गया है या स्वयं ही निकल कर कहीं चला गया है। उसने मंत्रियों और सामंतों को सर्वनाश हो जाने का दुराशीष दिया। रावल भीम का कोई पुत्र नहीं था – मात्र एक पुत्री थी, जिसका विवाह

जालोर के राजा कांधल के साथ हुआ था। कांधल का पुत्र रणधवल सदैव अपने नाना और नानी के साथ चित्तौड़ में ही रहता था।

अपने भाई के वियोग से संतप्त वृद्ध रावल भीम की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। सोनगिरा कांधल ने अपनी पत्नी की प्रेरणा से चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। उसने गुहिल वंशी सभी वीरों को मौत के घाट उतार दिया या राज्य से बाहर निकाल दिया। उस समय भीम की एक गर्भवती रानी पीहर गई हुई थी। उस रानी ने वहीं माहप नाम के एक राजकुमार को जन्म दिया। बड़ा होने पर राजकुमार माहप एक बार अपने मामा के साथ आखेट पर गया। वहाँ उसके मामा ने उस पर व्यंग्य किया कि उसकी बहिन ने उसके पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया है– ऐसी स्थिति में उसके साथ मेल-मिलाप कैसे किया जा सकता है। माहप इससे रूष्ट होकर डूंगरपुर जाकर भील राजा की सेवा चाकरी करने लगा।

अपने परिवार के भरण पोषण की समस्या से मुक्ति पाकर एक दिन उसने प्रीतिभोज का आयोजन किया और समस्त पालों के स्वामी भीलों को आमंत्रित किया। उसने अपने सगे संबंधी क्षत्रियों को भी उस प्रीतिभोज में आमंत्रित किया। माहप ने भीलों को खूब शराब पिलाकर मूर्छित-सा कर दिया और अपने सगे संबंधियों के सहयोग से उनको मौत के घाट उतार कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया।

एक दिन पुंगल देश के भाटी राजा भीम की वीर पुत्री रांणगवे जो सदैव पुरुष वेश में रहती थी और राणंगसी के नाम से विख्यात थी, मुगलों के घोड़ो की हेड़ को लूटकर गोदावरी नदी पार कर अहरोड़ की ओर आ निकली। नदी किनारे घोड़ो को चराते राणंगसी को भारत सिंह ने देखा और उसे आमंत्रित कर, उसे अतिथि रूप में अपने यहाँ रख लिया। दोनों ही मिलकर यवनों के घोड़ो को लूटते थे। एक दिन भारतसिंह ने राणंग को गोदावरी नदी के किनारे सूर्य को अर्घ्य देते हुए देख लिया। राणंग ने अभिग्रह ले रखा था कि वह उस पुरुष से ही विवाह करेगी, जिसकी छाया सूर्य का जाप करते हुए उस पर पड़ जाएगी। उसका अभिग्रह पूरा हुआ। राजा भीम ने अपनी पुत्री के विवाह का नारियल भारत सिंह को भेजा और दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। राणंगवे से राजकुमार राहप का जन्म हुआ। राहप

जब बारह वर्ष का हुआ, राणंग ने उसको अपने पिता के स्थान पर रोमसाम के बादशाह की चाकरी करने भेजा। माता की आज्ञा मानकर राहप विशाल सेना के साथ बादशाह की राजसभा में पहुँचा।

राहप के गौरवर्ण और सौन्दर्य को देखकर बादशाह ने हँसी-हँसी में भारतसिंह से पूछ लिया कि वह तो सांवले रंग का है, जबकि उसका पुत्र गौर वर्ण का है। यह खेत का प्रभाव है या बीज का? भारतसिंह को यह अच्छा नहीं लगा। उसने राणंग को पत्र लिखकर अपने पुत्र को दरबार में भेजने का उपालंभ दिया– जिसके कारण उसको इस प्रकार के उपहास का कारण बनना पड़ा। राणंगदे को अपनी बहिन मानकर अपना आधा राज्य उसको दे दिया।

चित्तौड़ में सोनगिरा काँधल निरंकुश राज्य कर रहा था। उसने अपना महल बनाने के लिए गुहिलोतों के एक भाट रणधीर की भूमि हथिया ली। रणधीर के विरोध करने पर उसने भाट को तिरस्कृत कर राज्य से निष्कासिक कर दिया। भाट ने प्रतिज्ञा कर ली कि वह काँधल को राजगद्दी से हटाकर गुहिलवंशी वीरयोद्धा को पुनः चित्तौड़ के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठापित करेगा। तदनुसार वह डूंगरपुर पहुँचा और माहप को प्रेरित किया कि वह अपने पैतृक राज्य पर पुनः अधिकार करे। माहप के द्वारा असामर्थ्य प्रकट करने पर अपने परिवार को डूंगरपुर में छोड़कर सूर्यवंशी गुहिल पुत्रों की खोज में वह देश का भ्रमण करने लगा। गोदावरी के तटपर निवासित एक योगी ने भारतसिंह का परिचय दिया कि वह गुहिलोत वंशी शासक है। वह सूरजमल का पौत्र और सामंतसिंह का पुत्र है और रोमसाम के बादशाह के द्वारा दिए हुए अहरोड़गढ़ के विशाल राज्य का स्वामी है। भारतसिंह के समीप पहुँचकर भाट ने उसके सम्मुख चित्तौड़ की दुर्दशा का वर्णन किया और चित्तौड़ पर आक्रमण कर अपनी पैतृक भूमि पर अधिकार हेतु प्रेरणा दी। भारतसिंह ने अपनी रानी राणंगदे और राजकुमार राहप को विशाल सेना सहित चित्तौड़ पर अधिकार हेतु भेजा। राहप ने जालोर पर आक्रमण करके रोनगिरों का संहार किया और चित्तौड़ पर आक्रमण करके उसे अधिकार में लिया। राहप को राणा की उपाधि से विभूषित किया गया।

राणा राहप ने कुशलतापूर्वक कार्य भार संभाला। राणा राहप के वंशक्रम में हम्मीर तक इनके मध्य सोलह नाम दिए गए हैं। यहाँ पर पंचम खण्ड की समाप्ति होती है।

षष्टम् खण्ड में 'राणा रतनसेन पद्मिनी और गोरा-बादल' की कथा दी गई है। चित्तौड़ में राणा रतनसेन राज्य करता था। एक दिन भोजन में विरसता के कारण उसका अपनी पटरानी से विवाद हो गया। पटरानी ने उसको किसी पद्मिनी स्त्री से विवाह कर लेने हेतु ताना मारा। क्रुद्ध होकर राणा अपने एक सेवक को साथ लेकर पद्मिनी स्त्रियों के प्रदेश सिंहल के लिए प्रस्थान कर गया। एक भाट से मार्ग पूछकर वह समुद्र के किनारे जा पहुँचा। वहाँ एक सिद्ध योगी ने उन दोनों को अपनी हथेली पर बैठाकर सिंहल में पहुँचा दिया। सिंहल के राजा की पद्मिनी की यह प्रतिज्ञा थी कि वह चौपड़ के खेल में इसको पराजित करने वाले से ही विवाह करेगी। रतनसेन ने उसको पराजित करके उससे विवाह कर लिया और पद्मिनी को साथ लेकर चित्तौड़ लौट आया।

राघव व्यास नाम का एक तांत्रिक ब्राह्मण राजगुरु राजमहलों में निर्बाध आया करता था। एक दिन उसने रतनसेन और पद्मिनी को एकांत में रतिविलास करते देख लिया। रतनसेन इससे क्रुद्ध हो उठा और उसने राघव व्यास की आँखें निकालने का आदेश दिया। इससे भयभीत होकर राघव चित्तौड़ छोड़कर दिल्ली भाग गया। अपने शास्त्र-ज्ञान के आधार पर वह बादशाह के दरबार में जा पहुँचा और बादशाह से बहुत अधिक सम्मान प्राप्त किया। वह रतनसेन से बदला लेने का उपाय सोचने लगा। इसके लिए उसने एक भाट से संपर्क किया।

एक दिन बादशाह दरबार में बैठे हुए सभासदों से चर्चा कर रहा था। किसी ने उसको हंस का पंख दिया। उसके पंख की कोमलता को देखकर बादशाह ने दरबारियों से पूछा कि क्या इससे भी अधिक कोई मूल्यवान वस्तु हो सकती है। राघव ने बताया कि पद्मिनी स्त्रियाँ इससे भी अधिक मृदु और सुंदर होती हैं और सिंहल में मिलती हैं। बादशाह ने उससे अपने हरम की बेगमों की इस दृष्टि से परीक्षा करवाई पर उनमें से एक भी बेगम में पद्मिनी के लक्षण न पाए जाने पर पद्मिनी की प्राप्ति के लिए बादशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया।

रतनसेन और बादशाह की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ – पर बादशाह दुर्ग में पहुँच पाने में समर्थ नहीं हो पाया। राघव के संकेत पर उसने शास्त्रों के अनुसार रतनसेन और स्वयं को पूर्वजन्म का भाई होना बताया। बादशाह ने रतनसेन को कहलवाया कि वह पद्मिनी के हाथ से भोजन करने का और

चित्तौड़ दुर्ग को देखने का इच्छुक है और उसे कुछ भी नहीं चाहिए। आसानी से संकट को टालता देख कर रतनसेन ने बादशाही प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसने बादशाह ने तीस हजार सैनिकों के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। उसके सम्मान में दरबार किया गया। रतनसेन ने अंतःपुर में पहुँचकर पद्मिनी को बादशाह की ओर से प्रस्तुत प्रस्ताव की बात कही– पर पद्मिनी ने अपने हाथ से भोजन कराना स्वीकार नहीं किया। इस पर पद्मिनी ने दो हजार दासियों को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया। वे बादशाह को भोजन कराने लगी। उनके रूप सौन्दर्य को देखकर बादशाह विभ्रमित होकर पूछता था कि इनमें पद्मिनी कौन-सी है? राघव ने बताया कि ये सभी वो दासियाँ हैं। इतने में ही पद्मिनी स्वयं कौतुहलवश गवाक्ष में बादशाह को देखने के लिए आ पहुँची। राघव ने संकेत से अलाउद्दीन को पद्मिनी की झलक दिखा दी। जिसे देखकर वह मूर्छित हो गया।

भोजन के उपरांत बादशाह जब दुर्ग देख कर लौटने लगा – रतनसेन उसको पहुँचाने दुर्ग से नीचे तक आ गया। अवसर देख कर बादशाह ने उसको बंदी बना लिया और दुर्ग में संदेश भिजवा दिया कि यदि पद्मिनी उसको सौंप दी जाएगी तो वह राजा रतनसेन को मुक्त कर देगा। तदनुसार सामंतों ने मंत्रणा करके राजा को मुक्त कराने के लिए पद्मिनी को सौंप देने का निश्चय किया।

पद्मिनी ने जब सामंतों के इस निर्णय के विषय में सुना तो वह अपने सतीत्व और कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए गोरा बादल के पास पहुँची, जिन्हें राज्य की ओर से कोई वेतन, जागीर या राजसम्मान तक प्राप्त नहीं था। वे चित्तौड़ छोड़कर जाने का विचार कर ही रहे थे कि इतने में बादशाही फौजी ने दुर्ग को घेर कर सभी मार्गों को अवरूद्ध कर दिया था। क्षात्रधर्म की मर्यादा ने भी उन्हें वहीं रोक दिया था।

पद्मिनी के अपनी शरण में आने पर उन्होंने उसके सतीत्व की और सौभाग्य की रक्षा का पूरा आश्वासन दिया। बादल ने वात्सल्य-भावग्रस्त अपनी माता के कथन और मोहग्रस्त पत्नी ने उसको रोकने का निष्फल प्रयत्न किया। उनकी अनुमति लेकर बादल ने सामंतों से परामर्श करके एक कूटनीतिक योजना बनाई। बादशाही शिविर में अकेले ही प्रवेश कर उसने बादशाह को अपने चक्रव्यूह में फँसाकर आश्वस्त कर दिया कि वह पद्मिनी के द्वारा भेजा गया दूत है और पद्मिनी को लेकर स्वयं बादशाह के

पास आएगा। उसके परामर्श पर बादशाह ने मात्र चार हजार सैनिकों को अपने पास रखकर शेष सेना को दूर भेज दिया।

योजनानुसार बीस हजार सजी-सजाई पालकियों में सुसज्जित राजपूत वीरों को शस्त्रों के साथ बैठकर बादल बादशाही शिविर की ओर प्रस्थान कराया। पद्मिनी की पालकी में गोरा बैठा। अपनी युक्ति से रतनसेन को मुक्त कराकर उसने उसे सुरक्षित दुर्ग में भेज दिया। उपयुक्त अवसर देखकर पालकियों से निकल कर सशस्त्र राजपूत योद्धा बादशाह के सैनिकों पर टूट पड़े। भयंकर युद्ध हुआ। गोरा वीर गति को प्राप्त हुआ। बादशाह पराजित होकर भाग गया। राजा और रानी ने सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। गोरा की पत्नी गोरा के द्वारा प्रदर्शित वीरता की कथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और सती हो गई। यहाँ पर षष्टम खण्ड समाप्त होता है।

सातवाँ खण्ड राणा अरसी से आरंभ होता है पृथ्वी पर तिलक के रूप में सुशोभित, सभी दुर्गों में श्रेष्ठतम दुर्ग चित्तौड़ में राणा अरसी राज्य करता था। एक बार वह शिकार करने के लिए एकलिंग जी के पहाड़ों में पहुँचा। मार्ग में वह देवीदास चंदाणा की पुत्री के शौर्य और सौन्दर्य को देख कर अभिभूत हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया। उस लड़की से हम्मीर का जन्म हुआ। बारह वर्ष की आयु में ही हम्मीर ने शस्त्र विद्या और शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

उन दिनों ताणा के मल्ला सोलंकी ने राज्य में लूटमार करके बहुत उत्पात मचा रखा था। उसने अपना सुदृढ़ में वास (गुप्त स्थान) बना लिया और गुहिलोतों के राज्य में अपना ग्रास स्थापित कर लिया था। प्रजा ने राजा से आग्रह किया कि मल्ला का संहार करने के लिए किसी राजकुमार को भी इस काम के लिए साथ में भेजा जावे।

राणा ने राजकुमार को बुलाकर मल्ला को मारने का आदेश दिया। राजकुमार ने कायरतापूर्ण उत्तर देकर मल्ला के साथ संघर्ष करने में अपनी असमर्थता बताई। मंत्री के द्वारा स्मरण दिलाने पर राणा ने हम्मीर को बुलाने के लिए दूत भेजा। हम्मीर ने दूत को आश्वस्त किया कि वह अकेला ही मल्ला का सिर काटकर राणाजी के चरणों में ला देगा। उसने मल्ला पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में शक्तिशाली मानसिंह की अद्‌भुत शक्ति को देखकर उसने उसे अपना सहयोगी बना लिया। मानसिंह की सहायता से मल्ला का सिर काटकर वह राणा के पास चित्तौड़ ले गया। राणा ने प्रसन्न

होकर चित्तौड़ की गद्दी सौंप दी और स्वयं काशी चला गया। हम्मीर अत्यंत न्यायप्रिय शक्तिशाली राजा था। वह महान दानी था। उसकी दानशीलता से प्रभावित होतकर भंगड़ नाम के भाट ने उससे उसका अश्व, पाटवी पुत्र, पटरानी और अपने दोनों नेत्र दान में देने की माँग की। राजा ने इन सबका संकल्प कर भाट को उनका अधिकार सौंप दिया। भंगड़ ने उसके अश्व और पुत्र का वध कर दिया। राजा के दोनों नेत्र निकाल लिए और अन्तःपुर में रानी के पास पहुँच गया। रानी के सम्मुख पुत्रवत् रहकर वह स्तनपान करता रहा और रानी वात्सल्यभाव से उसके साथ स्नेह करती रही। प्रातःकाल होने पर भाट हम्मीर के समीप आया उसने हम्मीर के दोनों नेत्र यथावत् स्वस्थ कर दिए, अश्व और पुत्र को पुनर्जीवित कर दिया। हम्मीर ने सत्तासी वर्ष और बीस दिन तक राज्य किया।

एक बार मंडोर के राजा रणमल ने लाखा के बड़े पुत्र चूंडा के लिए अपनी पुत्री मदनकुमारी के विवाह का प्रस्ताव भेजा। इस पर उपहास में लाखा ने कह दिया कि हम बुड्ढों के लिए विवाह का प्रस्ताव कौन लाए। चूंडा ने लाखा के इस कथन को सुनकर मदनकुमारी को अपनी माता के समान मानते हुए राणा से उसके साथ विवाह कर लेने की स्वीकृति दी। उसने राज्य के अधिकार का भी त्याग करते हुए वचन दिया कि मदनकुमारी का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा। राजकुमारी मदनकुमारी से सोकल का जन्म हुआ।

लाखा की मृत्यु हो जाने पर आठ वर्ष की अवस्था में मोकल राणा के पद पर सुशोभित हुआ। रणमल अपने पुत्र जोधा के साथ मोकल की सेवा में पहुँचा और मेवाड़ के सिंहासन पर अधिकार की लिप्सा से उसने रानी को बहाकर चूंडा को देश से निर्वासन दिलाया।

चूंडा मांडू के गोरी सुल्तान की सेवा में चला गया। उसे वहाँ बारह हजार का मनसब दिया गया। थोड़े समय बाद अपने पिता राव रणमल के गलत आशय को भाँप कर रानी ने अपने मंत्री की सम्मति से दूत भेजकर चूंडा को वापस बुला लिया। उसने दुर्ग में प्रविष्ट होकर रणमल को मार डाला।

मोकल की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र कुंभकर्ण सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने कुंभलगढ़ दुर्ग की स्थापना की। उन्हीं दिनों मुसलमान बादशाह से भयग्रस्त होकर हलवद का राणा झाला अज्जा गुजरात छोड़कर मेवाड़ में राणा कुँभा की शरण में आकर रहने लगा। बादशाह उसकी सुंदर पुत्री से विवाह करना चाहता था। कुंभा ने उसको अच्छी जागीर प्रदान की। उसने अपनी छोटी बेटी का संबंध

जोधपुर के राव मालदेव के साथ तय कर दिया। एक बार जब वह अपनी बड़ी बहन से मिलने आई– कुंभा उसके रूप सौन्दर्य को देख कर आकृष्ट हो गया और उससे भी विवाह कर लिया। इस पर मालदेव ने कुंभलगढ़ पर आक्रमण कर दिया। एक वर्ष तक युद्धरत रह कर मालदेव पराजित हो गया।

कुम्भकर्ण के पश्चात् रायमल राणा हुआ। उसके शासन में बनास नदी पर मुसलमानों के साथ उसने अनेक भयंकर युद्ध किए।

रायमल के तीन पुत्र थे– जयमल, पृथ्वीराज और संग्रामसिंह (सांगा)। उन दिनों टोडा में रामसिंह सोलंकी का शासन था। उसकी पुत्री का संबंध जयमल के साथ निश्चित हुआ। एक दिन पृथ्वीराज शिकार खेलता हुआ कुंभलगढ़ से टोडा पहुँचा। उसने रायसिंह सोलंकी पर दबाव डालकर जयमल की वाग्दत्ता लड़की से विवाह कर लिया। इस पर जयमल ने रायसिंह पर आक्रमण कर दिया, पर वह रायसिंह के साले रतना सांखला के हाथों मारा गया।

पृथ्वीराज पराक्रमी राजकुमार था। उसने उडणा हिन्दू की उपाधि प्राप्त की थी। सूरजमल की बहिन ने पृथ्वीराज को विषाक्त गोलियाँ दे दी थीं जिसके कारण कुंभलगढ़ के समीप उसकी मृत्यु हो गई।

रायमल के पश्चात् सांगा मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उस समय नलवर के नवाब बब्बर खान ने अपने मंत्री महिमाशाह की पुत्री से विवाह का प्रस्ताव रखा। महिमाशाह ने कुछ समय माँगा और अपना परिवार और धन संपत्ति लेकर राणा की शरण में आ गया। इस पर बब्बर खान ने सांगा पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। बब्बर खान पराजित हुआ। सांगा ने उसके युद्ध की सामग्री पर अधिकार कर लिया। सांगा की इस विजय से सभी देश काँप उठे और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। पीलियाखाल तक उसकी सीमा का विस्तार हो गया। यहाँ पर सप्तम खण्ड समाप्त होता है।

राणा सांगा के उपरांत उनका ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठा। उसका विवाह बूंदी के शासक सूरजमल हाडा की बहिन से हुआ। सूरजमल राणा के साथ घनिष्ठ संबंध में बंध जाने के कारण निर्भीक होकर बूंदी में रहने लगा। वह स्वयं को भी राणा रतनसिंह के समकक्ष मानने

लगा। अतः रतनसिंह ने बूंदी पर आक्रमण के लिए प्रस्थान किया। भयंकर युद्ध हुआ। रतनसिंह और सूरजमल दोनों ही एक दूसरे के हाथों मारे गए।

रतनसिंह के उपरांत विक्रमादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ। वह भी एक वर्ष तक सिंहासन का उपभोग करके मृत्यु को प्राप्त हुआ। विक्रमादित्य की मृत्यु हो जाने पर रतनसिंह के पासवानिया पुत्र बनवीर ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। सामंतगण इसे सहन नहीं कर सके। उन्होंने मंत्रणा करके सिंहासन पर राणा सांगा के पुत्र उदय सिंह को आरूढ़ कराने का संकल्प किया। उदयसिंह बचपन से ही अपने ननिहाल में रह रहा था।

एक दिन उदयसिंह ने ही जन्मभूमि में जाकर शक्ति प्रदर्शन का विचार किया। अपने पाँच सौ सुसज्जित घुड़सवारों के साथ वह कुंभलमेर आया। वहाँ केलवाड़ा में राजा देवड़ा ने उसका आतिथ्य किया। उदयसिंह ने उसको शिरोपाव और घोड़ा पुरस्कृत करके सम्मानित किया और उसको अपने राजसिंहासन कुंभलगढ़ दुर्ग और राज्य तथा खजाने की सुरक्षा का दायित्व सौंप दिया।

उदयसिंह ने अपने निजी दूत भेजकर सामंतों को आमंत्रित कर बुलाया। एक विशाल सेना के साथ उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसने बनवीर को संदेश भिजवाया कि उसे धर्मद्वार दिया जाता है, अतः निर्भय होकर वह चित्तौड़ छोड़कर चला जाए, अन्यथा सामने आकर मुकाबला करे। अंततः बनवीर अपने परिवार को लेकर दुर्ग से निकलकर चला गया। उदयसिंह चित्तौड़गढ़ में सिंहासनारूढ़ हो गया।

उस समय दिल्ली में बादशाह अकबर राज करता था। उदयसिंह ने उसका प्रभुत्त्व स्वीकार नहीं किया। एक बार मानसिंह समुद्रतटवर्ती राज्यों पर विजय प्राप्त कर दिल्ली लौट रहा था। प्रयाण करते हुए वह चित्तौड़गढ़ दुर्ग की ओर आया। उसने राणा उदयसिंह से जुहार किया। उदयसिंह ने राज्याचित्त मर्यादा के अनुसार उसका स्वागत करके स्नेह भी दिया, पर उदयसिंह भोज में सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि वह अकबर से वैवाहिक संबंधों के कारण आमेर के कछवाह को पतित मानता था। यही नहीं उसने उस स्थान को भी खुदवाकर गंगाजल का छिड़काव करवाया, जहाँ बैठकर मानसिंह ने भोजन किया था। इस बात की जानकारी मिलने पर मानसिंह क्रुद्ध हुआ। उसने बादशाह को उदयसिंह पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। काजियों ने भी अकबर को पूर्व में उदयसिंह पर आक्रमण के लिए

उकसाया था। परिणामतः अकबर विशाल सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ गया। मेवाड़ के सामंतों ने राजपूतों की रक्षा और क्षात्रधर्म की रक्षा के लिए डट कर मुकाबला किया। महाराणा की पासवान पेमा खातण ने मुगल सेना पर भयंकर प्रहार किए। तोप संचालन की कला में दक्ष उस वीर ने ढूँढ़-ढूँढ़कर मुसलमान योद्धाओं पर प्रहार किये। उसने धनुष बाण से निशाना साधकर दरबार लगाए बैठे अकबर के मेघाडंबर के दण्ड को काटकर बादशाह को भयग्रस्त कर दिया। महाराणा के सामंत एक स्त्री के द्वारा प्रदर्शित शौर्य को ईर्ष्याभाव से सहन नहीं कर सके और पेमा को विषपान कराकर मार डाला। उसकी मृत्यु से दुर्ग का देवांश समाप्त हो गया और दुर्ग का पतन हुआ। इस युद्ध में महाराणा के शूरवीर सामंत जयमल, पत्ता, साईदास, हरदास आदि काम आए। सूरजमल का पुत्र बाघा भी युद्ध में मारा गया और दुर्ग पर बादशाह का अधिकार हो गया।

उदयसिंह ने उदयपुर नगर बसाया और वहीं रहने लगा। उसने उदयसागर तालाब का एक आयोजन कर राजकुमारों को परीक्षा देने को कहा। शक्ति सिंह ने भूमि में गाड़ी गई कटार के फल पर मुष्टि प्रहार कर अपनी शक्ति की परीक्षा तो दी, वह इस आयोजन में अपने पिता से रूष्ट होकर दिल्ली चला गया और अकबर की सेवा स्वीकार कर ली।

उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् प्रताप सिंह सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने बादशाही थाने उजाड़ दिये। अकबर ने उस पर आक्रमण किया। प्रताप ने अपने पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ हल्दीघाटी में युद्ध करके बादशाही सेना को तीतर-बीतर कर दिया।

बादशाह प्रताप के दर्शन करने को उत्सुक था। शक्तिसिंह ने उसकी इच्छापूर्ति के लिए प्रताप को निवेदन किया कि वह अकबर के सम्मुख आकर अपने शौर्य और साहस का प्रदर्शन करे। तद्नुसार प्रताप ने आठ हजार अश्वारोहियों को भी अपने तलवार की तेज गति में लपेट लिया। बादशाह के हाखी के दांतों पर घोड़े के खुरों को टिकाकर उसके कुंभस्थल पर भयंकर प्रहार किए। बादशाह पर भी तलवार का घाव लगा। वह व्याकुल हो उठा। उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह योद्धा प्रताप ही थे। शक्तिसिंह ने उसे बताया कि वे ही हिन्दूपति राणा प्रताप सिंह है।

युद्ध में प्रताप के घोड़े की एक टांग कट गई। बादशाह ने दो उजबकों को प्रताप का पीछा करके मारने की आज्ञा दी। शक्तिसिंह भी अकबर से अनुमति लेकर प्रताप के पीछे चला। उसने दोनों अजबकों

को मार गिराया और भाई के प्राणों की रक्षा की। प्रताप ने अकबर की सेवा छोड़कर मातृभूमि की सेवा में आने का निमंत्रण दिया। इस प्रकार हल्दीघाटी का युद्ध हुआ।

प्रताप के बाद अमरसिंह गद्दी पर बैठा। उसका भाई सगर अकबर से जा मिला। अकबर ने उसको राणा की उपाधि देकर चित्तौड़ का शासक बना दिया। उसके राज्यकाल में उसका मंत्री भामाशाह अहमदाबाद गया और वहाँ के सेठ से दो करोड़ रुपए और युद्ध सामग्री ऋण के रूप में लेकर आया। उसके राजकाल में शक्तिसिंह के पुत्रों और चूड़ावतों ने मिलकर ऊंठाले के दुर्ग को घेर लिया और द्वार के कपाट तोड़कर तथा परकोटे लाँघकर वे नगर में प्रविष्ट हुए और शाही थाने को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस युद्ध में अचला, बाघा, बल्लू आदि शक्तावत वीर काम आए। सगर चित्तौड़ छोड़कर चला गया।

अमरसिंह के उपरांत कर्णसिंह शासक बना। उसका पुत्र जगतसिंह सूरवीर और महादानी राजा था। उसके समय देबारी का युद्ध हुआ। जगतसिंह के उपरांत राणा राजसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उसने टीकादौड़ की परम्परा का पालन करते हुए मानपुरा आक्रमण कर उसे लूट लिया। औरंगजेब किशनगढ़ के राजा मानसिंह की पुत्री से विवाह का इच्छुक था। उस राजकुमारी ने महाराणा राजसिंह के पास स्वयं अपने विवाह का प्रस्ताव भेजा, जिसे स्वीकार कर राजसिंह सेना लेकर किशनगढ़ गया और राजकुमारी के साथ विवाह करके उदयपुर ले आया। उसने तीन नदियों के प्रवाह को रोककर राजसमुद्र नामक तालाब का निर्माण करवाया।

काव्य की प्रति अपूर्ण है। पूना और लंदन में उपलब्ध दोनों ही प्रतियाँ अपूर्ण हैं। इनका पाठ छन्द संख्या 3576 के बाद समाप्त हो जाता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि कवि ने अवश्य ही मेवाड़ में शासन कर रहे महाराणा संग्रामसिंह तक का वर्णन किया होगा, पर जब तक पूरी प्रति प्राप्त नहीं हो जाती है तब तक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. हिन्दी की वीर काव्य धाराः डॉ. बटे कृष्णः विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसीः प्रथम संस्करण 1982, पृष्ठ संख्याः65
2. वहीः पृष्ठ संख्याः65
3. वहीःपृष्ठ संख्याः66
4. वहीः पृष्ठ संख्याः66
5. खुम्माण रासोः दलपति विजयः महाराणा प्रताप स्मारक समिति उदयपुरः प्रथम संस्करण अप्रैल 2001, पृष्ठ संख्याः52
6. वहीः पृष्ठ संख्याः 53
7. वहीःपृष्ठ संख्याः 55
8. वहीः पृष्ठ संख्याः61
9. वहीः पृष्ठ संख्याः62
10. वहीः पृष्ठ संख्याः63
11. वहीः पृष्ठ संख्याः64
12. वहीः पृष्ठ संख्याः67
13. वहीः पृष्ठ संख्याः68
14. वहीः पृष्ठ संख्याः69
15. वहीः पृष्ठ संख्याः70
16. वहीः पृष्ठ संख्याः70
17. वहीः पृष्ठ संख्याः71
18. वहीः पृष्ठ संख्याः71
19. वहीः पृष्ठ संख्याः73
20. वहीः पृष्ठ संख्याः75
21. वहीः पृष्ठ संख्याः87
22. वहीः पृष्ठ संख्याः95
23. वहीः पृष्ठ संख्याः96
24. वहीः पृष्ठ संख्याः98
25. वहीः पृष्ठ संख्याः124

26. वही: पृष्ठ संख्या:153
27. वही: पृष्ठ संख्या:157
28. वही: पृष्ठ संख्या:161
29. वही: पृष्ठ संख्या:169
30. वही: पृष्ठ संख्या:169
31. वही: पृष्ठ संख्या:173
32. बिहारी रत्नाकर:श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर:लोकभारती प्रकाशन:पृष्ठ संख्या:40
33. खुम्माण रासो:दलपति विजय: पृष्ठ संख्या:228
34. वही: पृष्ठ संख्या:229
35. वही: पृष्ठ संख्या:233
36. वही: पृष्ठ संख्या:250
37. वही: पृष्ठ संख्या:255
38. वही: पृष्ठ संख्या:264
39. वही: पृष्ठ संख्या:280
40. वही: पृष्ठ संख्या:281
41. वही: पृष्ठ संख्या:282
42. वही: पृष्ठ संख्या:282
43. वही: पृष्ठ संख्या:283
44. वही: पृष्ठ संख्या:283
45. वही: पृष्ठ संख्या:284
46. वही: पृष्ठ संख्या:284
47. वही: पृष्ठ संख्या:285
48. वही: पृष्ठ संख्या:285
49. वही: पृष्ठ संख्या:286
50. वही: पृष्ठ संख्या:286
51. वही: पृष्ठ संख्या:287
52. पद्मावत: मलिक मुह्मद जायसी:संपादक: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल:भारतीय ज्ञानपीठ 2011 पृष्ठ संख्या:120

53. खुम्माण रासोः दलपति विजयः पृष्ठ संख्याः293
54. वहीः पृष्ठ संख्याः310
55. वहीः पृष्ठ संख्याः328
56. वहीः पृष्ठ संख्याः329
57. वहीः पृष्ठ संख्याः332
58. वहीः पृष्ठ संख्याः366
59. वहीः पृष्ठ संख्याः369
60. वहीः पृष्ठ संख्याः385
61. वहीः पृष्ठ संख्याः390
62. वहीः पृष्ठ संख्याः412
63. वहीः पृष्ठ संख्याः415
64. वहीः पृष्ठ संख्याः481

अध्याय – 3

खुम्माण रासो की कथा शैली

भारतीय साहित्य में पुराणों के साथ इतिहास को महत्त्व मिलता रहा है। परन्तु भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक काव्यों की एक विशिष्ट परम्परा मिलती है इस सन्दर्भ में शम्भूनाथ सिंह का विचार है कि " ऐतिहासिक महाकाव्य वे हैं जिनका कथानक इतिहास से लिया गया है और जिनका घटनाक्रम भी इतिहास-सम्मत होता है, पर जिनकी शैली शास्त्रीय महाकाव्य की ही होती है...। पर ऐसे काव्य जिनका लक्ष्य इतिहास-क्रम या चरित नायक के जीवन वृत्त का सीधा वर्णन कर देना रहता है और साथ ही जिनमें काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का मनमाना उपयोग भी किया जाता है, ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य कहे जा सकते हैं।"[1] इस प्रकार इतिहास- क्रम के स्तर पर ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यों की तीन कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(क)समसामयिक कवियों द्वारा लिखे गए ऐतिहासिक काव्य

(ख) परवर्ती कवियों द्वारा लिखे गए ऐतिहासिक काव्य

(ग) विकसनशील ऐतिहासिक काव्य

उक्त तीनों कोटियों में हम रास- ग्रन्थों की गणना करें तो हमें एक सीधी और स्थूल दृष्टि से तीनों कोटियों में लिखित रास-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं क्योंकि अनेक आश्रयदाता राजाओं के समसामयिक दरबारी कवियों ने अथवा परवर्ती कवियों ने उनकी रचना की है। लेकिन कुछ रास ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनके रचयिता तो सम-सामयिक हैं, पर उनके द्वारा लिखित काव्य-कल्पना अतिशयोक्तिपूर्ण है तथा उनमें न तो सुन्दर काव्य- प्रतिभा मिलती है और न सच्चा इतिहास ही, क्योंकि उनमें तथ्य और कल्पना(Facts and Fiction) का मणिकांचन योग मिलता है। एस.के. डे ने लिखा है कि-" तथ्य और कल्पना(Facts and Fiction) के मिश्रण की जो कथा इन प्रशस्तियों द्वारा स्थापित हुई, वह बाद के ऐतिहासिक काव्य-लेखकों द्वारा भी स्वीकृत हुई और धीरे-धीरे कठोर तथ्यात्मक सत्यों की उपेक्षा कर सुखद कल्पना की ओर ही कवियों का अधिक झुकाव होता गया।"[2]

खुम्माण रासो ऐतिहासिक रास-परम्परा के अन्तर्गत आता है। ऐतिहासिक रासकाव्यों का मूल 'वीरकाव्य' है और उनके नायक महान योद्धा होते हैं, परन्तु उस वीर काव्य उल्लेख के साथ विभिन्न प्रेमकथाओं का आकलन भी उपलब्ध होता है।'खुम्माण रासो' लगभग 3600 छन्दों में विरचित एक विशाल काव्य है। यह काव्य आठ खण्डों में है-

प्रथम चार खण्डों में 'सामंत बापा रावल और करण विषयक अधिकारों को स्थान दिया गया है। पंचम से अष्टम खण्डों में करण खुम्माण की वंश परम्परा में मेवाड़ के राजसिंहासन को सुशोभित करने वाले रावल आलणसी, रावल समरसी,राणा राहपसी, राणा रतनसेन,अरसी, हम्मीर, खेता, लाखा, मोकल, कुम्भा, रायमल, सांगा, उदयसिंह, राणा प्रताप, अमर सिंह, करण सिंह, जगत सिंह और राज सिंह तथा उनके राज्यकाल में घटित प्रमुख घटनाओं का विवरण समाहित किया गया है।

रासो एक विवरणात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें मुख्य कथा के साथ बहुत सी गौण कथाएँ हैं। गौण कथाओं का मुख्य कथा के साथ ज्यादा सम्बन्ध नहीं है इसलिए कथा में बिखराव दिखाई देता है। कथा बहुत लम्बी है इसलिए कहीं कहीं उबाऊ हो जाती है। मुख्य कथा जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि खुम्माण के बारे में है जिसमें उसके जीवन से लेकर मृत्यु तक का वर्णन है और गौण कथाओं में राजा खुम्माण के वंशों का वर्णन है।

खुम्माण रासो में कवि का मुख्य उद्देश्य मेवाड़ के सर्वांगपूर्ण इतिहास को अपनी रचना में समाहित करना है, उसके साथ ही रावल राणाओं के चरित्र को उजागर करना भी कवि का उद्देश्य है।

कथा वीररस प्रधान है किन्तु कवि ने शृंगाररस का भी वर्णन किया है। यही कारण है कि कथा में कहीं भी बोझिलता का समावेश नहीं हो पाता।

कवि का उद्देश्य रावल राजाओं के चरित्र को दिखाना था, इसके लिए सांसारिक वस्तुओं को दिखाना आवश्यक है। इसके लिए कवि ने जीवन के विविध प्रसंगों की सृष्टि की है उदाहरण के लिए स्त्री का सौन्दर्य, नख-शिख वर्णन, खुम्माण के वियोग पर परिवार वालों का दुखी होना,

खुम्माण का संयोग, षट्ऋतु और बारहमासा, युद्धों का उत्साह पूर्ण वर्णन, बादल की वीरता आदि मानव जीवन के मार्मिक प्रसंग भरे पड़े हैं।

इस ग्रन्थ के पात्रों कि यदि चर्चा करें तो नायक खुम्माण एक गुण सम्पन्न पुरूष है। जिसके बारे में कवि कहता है-

"गढ़ गिरंद चितोडगढ़, भलो करण भूपाल।।

अंगज जस षुंमाण इल, भलहल रूप भूपाल।।"[3]

अर्थात् पार्वती –दुर्गों में सर्वोत्तम दुर्ग चित्तौड़गढ़ का राजा करण सर्वश्रेष्ठ है। उसका पुत्र खुम्माण इस पृथ्वी पर प्रकाशमान रूप वाला युवराज है। चरित काव्यों की यह विशेषता थी कि उसमें नायक के चरित्र की रेखाओं को उभारने की चेष्टा की जाती थी। दलपति विजय ने भी अपने नायक के चरित्र का ध्यान रखा है तथा उसमें कहीं भी शिथिलता नहीं आने दी है। इसके अतिरिक्त सभी रावल राजाओं के चरित्र को भलीभाँति उजागर किया । अतः चरित्र चित्रण करने में कवि सफल है।

खुम्माण रासो की काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

3.1 रस-

खुम्माण रासो एक विशाल काव्य है। यह वीर रस प्रधान कृति है। वीर पूजा की भावना मानव और मानव जाति तथा विशेषतः कवि कुल की सहज प्रवृत्ति रही है। यही कारण है कि दलपति विजय ने अपने प्रस्तुत काव्य में पराक्रम और शौर्य का अभिनन्दन किया है। यद्यपि इस ग्रन्थ में खुम्माण और उनके वंशों के क्रियाकलापों का वर्णन किया गया है परन्तु उन सबमें शौर्य की प्रमुखता होने से यह काव्य वीर काव्य प्रतीत होता है और विद्वतजनों ने भी इसे वीर काव्य माना है। रासो के विषय में डा. शम्भूनाथ सिंह का वक्तव्य है "यदि शास्त्रीय दृष्टि से इसे वीर रस का काव्य मानने में आपत्ति हो तो भी इस सत्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह वीर काव्य है जिसमें एक महान वीर की जन्म से मरण पर्यन्त की जीवन कथा लिखी गई है। वीर के रूप में रासो के

नायक का जीवन आदर्श है, उसके पराक्रम और युद्धों की कथा पाठकों में अदम्य उत्साह और साहस की भावना मरती है और वीर रस का संचार करती है अतः अपने समग्र प्रभाव के कारण रासो सभी रसों से युक्त होते हुए भी वीर रस प्रधान महाकाव्य ही माना जाएगा।''[4]

यह विचारधारा अक्षरशः रासो पर चरितार्थ होती है। इसका मुख्य रस वीर रस है। खुमाण रासो के अतिरिक्त बापा, रावल का पौरूष, आलणसी एवं राणा प्रताप की साहसिकता विशद् रूप से रासो के चित्रपट पर चित्रित है। आदि से अवसान तक युद्ध ही युद्ध दृष्टिगोचर होता है। निःसंदेह यह कृति वीर रस प्रधान है।

वीर रस

अपभ्रंश काव्यों में युद्धों की भरमार रही है और युद्धों का मुख्य कारण रहे हैं- नारी अपहरण, स्वयंवर, पड़ोसी राज्य का छीन लेना आदि। इसलिए वीर रस को शृंगार ने स्फूर्ति दी है। न केवल युद्ध के समय ही अपितु शान्ति के समय में भी वीरों के विलास प्रदर्शन द्वारा शृंगार की संयोजना करना वीरगाथा काल के कवियों की विशेषता रही है।

खुम्माण रासो में एक तरफ वीरता तथा संघर्ष और युद्ध चेतना के विभिन्न स्तरों का अंकन मिलता है तो दूसरी तरफ शृंगार रस भी आन्दोलित होता हुआ दिखाई देता है। दलपति विजय की भाव- नियोजना का एक उदाहरण देना वांछनीय है। युद्ध की सजीवता का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"पाडें पग हेठल दिया, दाणव तणा दुवाह।

आवे भिड किधी अचड़, नाहर नागेंद्राह।।[5]

अर्थात् दानव की सेना को अपने पाँवों के नीचे रौंद कर नागदा के स्वामी बापा ने उत्साह सहित भयंकर युद्ध किया।

वीर रस का एक और उदाहरण इस प्रकार है-

"तणण सणण वहें गोली तीर ।मारें मुगल पठाणां मीर।।

कोहक बाण कूक रूकां करें। पडें रीठ असपति ऊपरें।।'[6]

अर्थात् बन्दूकों से गोलियाँ और धनुषों से बाण सनसनाते हुए तीव्र गति से चल रहे थे। वे मुगलों, पठानों और मीरों का संहार करते थे। अग्निबाण कोयल के समान कुहकते चलाए जा रहे थे। बादशाह के ऊपर खड्ग प्रहार हो रहे थे। ऐसे अनेक उग्रता सम्पन्न वर्णन रासों में समाविष्ट है।

रासो का मुख्य रस वीर रस है और उसके साथ ही भयानक, रौद्र तथा वीभत्स का पोषण भी होता गया। वीरता प्रधान काव्य में उन रसों की नियोजना स्वभावतः ही हो जाती है। रसवत्ता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए तथा परिवेश की यथार्थता को स्पष्ट करने के लिए कवि ने वीर सामन्तों के चित्रों, सैन्य-सज्जा,व्यूह-रचना आदि का वर्णन किया है। वीर पूजा का स्वर तो पंक्ति पंक्ति से फूट पड़ता है। अपने शौर्य का प्रदर्शन करने के लिए तथा वीरत्व की परीक्षा में सफलता पाने के लिए रावल समर सिंह ने घोड़ों को सजाकर सभी तेरह हजार श्रेष्ठ कुल के घुड़सवार ठाकुरों को बादशाही फौज पर झोंक दिया। रावल समरसिंह के शूरवीर सामंत युद्ध में लड़ते हुए गिरते थे और पुनः खड़े होकर टक्कर लेते थे। कई एक शत्रुओं के सिर पर तलवारों के प्रहार करते हुए हाथियों के दाँतों पर जा चढ़े।–

"*अधिपति एराकी कसें, तेर सहस असवार।*

आलिम दल ऊरेंविया, साषीता सिरदार।।

पड़े लड़े फिर आथड़ें, सूरवीर सामंत।

अरि सिर षग आछटतां,के चढ़िया गजदंत।।'[7]

युद्ध के ऐसे वर्णन रासों में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। साथ ही साथ अपभ्रंश काव्यों में स्त्रियों की अद्भुत दर्पोक्तियाँ पढ़ने को मिलती हैं। राजस्थानी वीरांगनाओं के वीर भावों का सजीव चित्रण साहित्य में उत्कृष्ट स्थान रखता है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में से एक दोहा यहाँ उद्धृत है-

"भल्ला हुआ जो मारिया बहिणी महारा कंतु।।

लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरू एंतु।।[8]

अच्छा हुआ जो मेरा पति रणभूमि में मारा गया। यदि पराजित होकर घर लौटता तो मैं अपनी सखियों के समक्ष लज्जित होती।

वीर क्षत्राणियों की ऐसी अनेक गौरव गाथाएँ मिलती हैं, जिनमें वे वीर पत्नी के रूप में अपने कायर पतियों तथा वीर माताओं के रूप में अपने भीरू पुत्रों के हृदय में उत्साह का संचार करती हुई वर्णित की गई है। दलपति विजय ने प्रस्तुत काव्य में नारियों के उसी दर्प भाव को प्रदर्शित किया है। रतिसुंदरी की वीरता का एक उदाहरण देखने योग्य है-

"मारें सहू मुगल्ल, मगदलियो मेदा रहें।

अरि तावें ऊथल्ल, साबल अणि सीझोइआ।।"[9]

अर्थात् रतिसुंदरी ने सभी मुगलों को मार कर मेदे से बनाए जाने वाले पकवान की भाँति, शत्रुओं को उलट- फेर करके, भालों की नोंक सो सिद्ध किया।

एक और उदाहरण कछवाही रानी का है जो कि नरवर की थी। उसने पहलवान के समान अकेले ही युद्ध किया और शत्रुओं को घायल कर दिया। अनेक मुसलमान सैनिक युद्ध छोड़कर भाग गये। रासों में वीर रस के उपरान्त सर्वाधिक सजीव और सशक्त वर्णन शृंगार का मिलता है। वीरता की पृष्ठभूमि में दाम्पत्य का प्रस्फुटन करने में कवि को खूब सफलता मिली है। खुम्माण के शौर्य से प्रभावित बालाएँ उसको अपना बनाने के लिए आतुर रहती हैं। वे खुमाण की प्रेमिकाएँ हैं और शीघ्र ही उसकी पत्नी बनने को अधीर दिखलाई देती है। वीर की भार्या बनने का उनको गर्व है। पद्मावती, हंसावती, संयोगिता, रतिसुंदरी, तिलोत्तमा ऐसी ही प्रेमिकाएँ हैं जो झरोखे से झाँकती हुई नयनों से अपने प्रणयी का पथ देखती है। वे अश्रुपूरित नेत्रों, पूर्वानुराग एवं वियोग की दारूण व्यथाओं को झेलती हैं। उन्हें विश्वास है कि प्रिय आएगा और विरह की ये घड़ियाँ मिलन में अवश्य परिवर्तित होंगी।

रासो के हाव भावों एवं अनुभावों के मादक चित्रों का अवलोकन करके पाठक रस विभोर हो उठता है। राजा खुम्माण रति सुन्दरी के रूपपाश में आबद्ध हो चुका है। उधर रतिसुन्दरी भी अपने प्रेमी की अंकशायिनी होने के लिए आतुर है। परन्तु यह आतुरता शीघ्र ही प्रसन्नता में बदल गई। जिस प्रकार दर्पण के सामने मुख लाने पर उसमें प्रतिबिम्ब प्रगट होता है, उसी प्रकार दोनों की शक्लें एक दूसरे के सामने आईं। अपनी प्रियतमा के ऊपर मध्य भाग में स्थिर होकर वह संधिस्थल में संयुक्त हो गई-

"आनन आगल आदरस, सूरत उभें संजोड़।।

अरधंगा ऊछंग पर, रहो सु कायम जोड़।।"[10]

3.2 छन्द-

मनुष्य ने अपने जीवन में अलौकिक आह्लाद का अनुभव करते रहने के लिए जिन विविध ललित-कलाओं का आविष्कार किया है, काव्य उनमें सर्वोपरि है। काव्य की सरलता का मूल आधार जहाँ भाव तारल्य है, वहाँ उसका लय युक्त, संगीतात्मकता, सुव्यवस्थित और क्रमानुसार होना भी उपयोगी है। ये विशेषताएँ काव्य में भाव उत्पन्न से भी आ पाती हैं।

काव्य और छन्द का अनिवार्य अविच्छिन्न एवं आन्तरिक सहज सम्बन्ध है। भाव तो गद्य में भी प्रकट किए जा सकते हैं किन्तु छन्द की लय ही उस अभिव्यक्ति को गौरव प्रदान करती है। लय रागात्मक वृत्ति की प्रेरक होती है और लय की सृष्टि छन्द के माध्यम से ही हो सकती है। इसलिए काव्य में छन्द का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दलपति विजय ने खुम्माण रासों में छन्दों का बड़ा ही सुंदर प्रयोग किया है। खुम्माण रासो में दोहा,चौपाई और कवित्त छन्दों का प्रयोग कवि ने बड़े पैमाने पर किया है।

दोहा छन्द-

यह अर्द्धसममात्रिक छन्द, मुक्तक काव्य का प्रधान छन्द है। इसके पहले और तीसरे चरणों में 13-13 मात्राएँ, दूसरे और चौथे चरणों में 11-11 मात्राएँ तथा अन्त में लघु होता है।

हिन्दी साहित्य में दोहा छन्द का प्रयोग आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक प्रायः सभी कवियों ने किया है। इस छोटे से दोहे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सुनने वाले पर मारक प्रभाव डालता है।दलपति विजय ने रतिसुंदरी और उसके पति का वर्णन दोहे में बड़ी ही सुंदरता से वर्णन किया है-

महिलां सिर रति सुंदरी, भलो पुंमो भरतार।
जोड़ी अविचल दंपती, कर घड़िया किरतार।।[11]

अर्थात् राजकुमारी रति सुंदरी स्त्रियों में शिरोमणि रूप(सर्वश्रेष्ठ) स्त्री थी और उसका पति भी श्रेष्ठतम था। इनकी अविचल जोड़ी को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने अपने हाथों से निर्मित किया है।

चौपाई-

जिस पद्य में चार चरणों की पूर्ण व्यवस्था हो तथा प्रत्येक चरण में सोलह- सोलह मात्राओं का विधान हो, वहाँ चौपाई छन्द होता है। तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना भी इसी छन्द में की है। भाषा की सरलता और समासिकता एवं कल्पना की समाहारिता और प्रेषणीयता जितनी इस छन्द में रहती है उतनी अन्यत्र दिखाई नहीं देती। चौपाई· छन्द का एक उदाहरण-

अंग अहंकार करें रण- धूत। तेज्या सारीखा रजपूत।
रजवट राषो हिवें रावतां। अरिदल भांजो अणमावतां।।[12]

इस छन्द में रणोन्मत्त खुम्माण रावल ने गर्वोन्नत होकर अपने समान शूरवीर राजपूतों का आह्वान किया। हे राजपूतों! आप अपने हृदय में रजपूती क्षात्रधर्म की रक्षा करो और शत्रु की अपार सेना का संहार करो।

इन दोनों छन्दों के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है।

3.3 अलंकार-

आचार्य शुक्ल जी के अनुसार,''कविता में भाषा को सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप रंग या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रूप-रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्मशाली और-और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी-कभी बात को भी घुमा-फिराकर कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं।''[13]

डिंगल कविता अधिकतः वर्णनात्मक और भाव प्रधान कविता है अतएव डिंगल के कवियों ने ऐसे अलंकारों का वर्णन विशेष रूप से किया है जो वर्णय विषय की सजीवता और भाव व्यंजना को बढ़ाने में सहायक होते हैं। ये कवि अलंकारों के फेर में नहीं पड़े हैं बल्कि जहाँ पर आवश्कता थी जैसे सौन्दर्य वर्णन,सैन्य वर्णन तथा युद्ध वर्णन, वहीं पर अलंकारों का प्रयोग किया है संयम के साथ। दलपति विजय ने भी अलंकारों से काव्य को बोझिल नहीं किया है बल्कि आवश्यतानुसार सहज रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। उपमा, रूपक,उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग खुम्माण रासो में मिलता है। सबसे अधिक अनुप्रास अलंकार दृष्टव्य है-

झाट झड़ाझड़ षाग झटक्क। बाट बटिका कटें कटक्क।।
सार समार करें सामंत। बापा रा जोधा बलवंत।।[14]

3.4 भाषा

राजस्थान के कवियों ने अपनी कविताएँ दो प्रकार की भाषाओं में लिखी हैं, डिंगल और पिंगल। मोतीलाल के अनुसार, यह डिंगल राजस्थान की बोलचाल की भाषा राजस्थानी का साहित्य रूप है और पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन, अधिक साहित्य सम्पन्न तथा अधिक ओजगुण-विशिष्ट है। इसकी उत्पत्ति अपभ्रंश से हुई है।''[15]

डिंगल कविता का वास्तविक इतिहास उस समय से आरम्भ होता है जब राजस्थान पर मुसलमानों के आक्रमण होने लग गये थे और देश को संकट से बचाने के लिए यहाँ के राज-महाराजाओं को धन-जन का भारी बलिदान करना पड़ रहा था। यह एक भीषण हलचल तथा घोर अशान्ति का युग था और अपने देश और अपनी स्वतन्त्रता के लिए कमर कसकर तैयार रहना पड़ता था। इसके लिए उन्हें सैन्य बल तथा शस्त्र बल के अतिरिक्त कवियों की भी आवश्यकता रहती थी जो अपनी ओजस्विनी वाणी एवं वीर रस पूर्ण कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित कर उनमें देश के नाम पर पतंगों की तरह मर मिटने का साहस भर देते थे। यह काम उस समय चारण और भाट जाति के लोग करते थे। मोतीलाल मेनारिया के अनुसार,'' प्रारंभ में डिंगल काव्य- रचना पर चारण-भाटों का ही एकाधिकार था और ये लोग अपने आश्रयदाताओं के कीर्ति- कथन को ही अपनी कविता का चरम उद्देश्य समझते थे।''[16] लेकिन बाद में जब डिंगल भाषा का सम्मान बढ़ा तब मोतीसर, ढाढी, राजपूत, सेवग आदि अन्य जातियों के लोग भी इसमें कविता करने लगे और इसकी विषय-सामग्री में भी परिवर्तन शुरू हुआ। धीरे-धीरे इसमें ज्योतिष, वेदान्त, वैद्यक, धर्म, नीति आदि अनेक विषयों पर बहुत से ग्रंथ लिखे गए जिनमें कुछ तो ऐसे हैं जो संसार के किसी भी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकते हैं।''[17]

खुम्माण रासो डिंगल भाषा में लिखा गया काव्य है। यह भाषा लोक जीवन से जुड़ी हुई भाषा है। लोक से जुड़े हुए शब्दों, लोकोक्तियों और मुहावरों से भाषा सजीव और जीवंत हो गई है।

डिंगल भाषा की व्याकरण पर चर्चा करें तो मोतीलाल मेनारिया के अनुसार,''डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं 'ल' और कहीं वैदिक भाषा के 'ल' की भाँति मूर्धन्य होता है।'' यह विशेषता खुम्माण रासों में दिखाई देती है-

उदयो ज्युं उदयाचले, भलाहल तेजें भांण।
रायजादो रघुवंस-रिधु, प्रगट्यो पुन्य प्रमाण।।[18]

डिंगल भाषा में तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' नहीं है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप में होता है। लिखने में तालव्य 'श' के स्थान पर भी दन्त्य 'स' लिखा जाता है. लेकिन बेलते वक्त जिस 'सकार' और 'शकार' की आवश्यकता होती है वही बोला जाता है। जैसे-

चित्रकोट चउरासी सरें। परवत मोटो छें ऊपरें।।

च्यार दिस सरिषो चउसाल। वसुधा तिलक वण्यो सुविसाल"[19]

यहाँ पर सरीखो के लिए 'सरिषो' और दिश के लिए 'दिस' का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार खुम्माण रासों में डिंगल भाषा के लक्षण दिखाई देते हैं।

3.5 रासो में कथानक रूढ़ियाँ-

रूढ़ि शब्द 'रूह जन्मनि' धातु से किन् प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ है जन्म, उत्पत्ति, प्रसिद्धि एवं शब्द की शक्ति जो यौगिक न होने पर भी अर्थ स्पष्ट करे। रूढ़ि अतीतोन्मुखी होती है क्योंकि वह किसी प्रचलित मान्यता अथवा पौराणिक प्रसिद्ध प्राप्त विश्वास पर आधारित होती है। रूढ़ियों का निर्माण करने में लोक तत्वों का विशेष हाथ रहता है। परम्परागत विश्वासों की विशेषता यह होती है कि उनमें कोई कथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य सन्निहित रहती है। सामान्य कथा को कोई अविश्वसनीय मान सकता है पर पौराणिक या परम्परानुमोदित कथा पर लोक मानस प्रायः विश्वास कर लेता है। यही कारण है कि सभी देशों और सभी देशों और सभी जातियों के प्राचीन आख्यानों और गाथाओं के साथ धर्म और नैतिकता का घनिष्ठ संबंध रहता आया है।

भारतीय साहित्य में दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से दृष्टान्त रूप में लोक कथाएं का प्रचलन रहा है। कल्पित होने पर भी ये कथाएँ भारतीय लोक जीवन में व्याप्त है। लोक साहित्य में परिनिष्ठित साहित्य की अपेक्षा यह विशेषता रहती है कि उसमें जन जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है जबकि परिनिष्ठित साहित्य अभिव्यक्ति कौशल एवं शैली की सजावट के कारण यथार्थ से दूर जा पड़ता है।

संस्कृत साहित्य के विश्लेषण से विदित होता है कि उसमें जो कथा या चरित काव्य लिखे गए हैं वे या तो काल्पनिक हैं या इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों पर आधारित है। अपभ्रंश का साहित्य पुराणों पर आश्रित अधिक है इसलिए संस्कृत की अपेक्षा अपभंश में कथानक रूढ़ियों का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में हुआ है। संस्कृत साहित्य में 'रघुवंश', कुमारसंभव, शिशुपाल वध आदि महाकाव्यों का प्रणयन रामायण,महाभारत,पुराण आदि के किसी कथानक या उपाख्यान को लेकर हुआ है। सामंत युग में कवियों ने अपने आश्रयदाताओं का बढ़ा चढ़ा कर गुणगान किया। 11 वीं शती के उत्तरार्ध में विल्हण ने 'नवसहसांक चरित' लिखा जो नायक के अतिशयोक्ति पूर्ण चरित्र अति प्राकृत कृत्यों से भरा पड़ा है। जैन प्रबंध काव्यों या चरित काव्यों में जैनियों के कर्म का सिद्धान्त निहित है। इसी को सिद्ध करने के लिए जैन कवि इतिहास के इतिवृत्त की उपेक्षा करके उसे स्वेच्छा से तोड़ मरोड़ देता है। अपभ्रंश काव्य की रचना- पीठिका प्रायः धर्म प्रचार पर स्थित है, जैन धर्म लेखक पहले धर्म प्रचारक हैं फिर कवि। 'पउम चरिउ',भविसयत्त कहा, रिट्ठणेमि चरिउ आदि चरित काव्यों में अनेक असंभव घटनाओं को सम्भव करके दिखाया है। जैन मत प्रचार के अतिरिक्त इन रचनाओं का लक्ष्य था जनसाधारण तक अपनी बात पहुँचाना। क्लिष्ट शैली या दार्शनिक जटिलता सम्पन्न कविता सामान्य जन नहीं समझ पाता। अतः जन कथात्मक काव्य लिखे जो पुराण,इतिहास और अनेक अवान्तर कथाओं से ओत-प्रोत है।

इन सबको कहने का हमारा अभिप्राय यह है कि कथानक रूढ़ियों का जितना प्रचार-प्रसार हमें अपभ्रंश साहित्य या काव्यों में मिलता है उतना संस्कृत या प्राकृत में नहीं। भारतीय कथा लेखक अपनी कथा को इच्छित विस्तार देने के लिए कुछ ऐसी विशेषताओं और घटनाओं को स्थान देता है जो अतीतोन्मुखी होते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने लोक साहित्य में व्यवहृत होने वाले ऐसे उपादानों को 'मोटिफ' की संज्ञा दी गई है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन सामान्य घटना परक तथा विषयपरक विशेषताओं को 'कथानक रूढ़ि' के नाम से अभिहित किया है। काव्य की बाध्य रूढ़ियों को प्रबन्धात्मक रूढ़ि कहते हैं। कुछ कथानक रूढ़ियाँ जो भारतीय साहित्य और काव्य में प्रचलित हैं इस प्रकार हैं-

1. कहानी कहने वाला सुग्गा

2. स्वप्न में प्रिय के दर्शन पाकर आसक्त होना,चित्र दर्शन,गुण श्रवण द्वारा किसी पर मुग्ध होना।

3. मुनि का शाप देना

4. रूप परिवर्तन

5. लिंग परिवर्तन

6. परकाय प्रवेश

7. आकाश वाणी

8. अभिज्ञान या सहिदानी

9. परिचारिका का राजा से प्रेम और अन्त में उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान।

10. नायक का औदार्य

11. षट् ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह- वर्णन

12. शुक, हंस, कपोत आदि से संदेश भेजना

13. किसी राजकुमार के घोड़े का मार्ग भूल जाना।

14. विजन वन में संदरियों का साक्षात्कार

15. नाना प्रकार की आपत्तियों में फँसी हुई किसी सुन्दरी का उद्धार करना और फिर प्रेंम व्यवहार

16. गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और फिर गणिक माता का तिरस्कार

17. गरूड़ आदि के द्वारा प्रिय मुगलों का स्थानान्तरण।

18. पिपासा और जल की खोज में जाते समय असुर- दर्शन और प्रिय वियोग

19. उजाड़ नगर का मिलना

20. प्रिया की दोहद कामना की पूर्ति में अनेक आश्चर्यजनक एवं असाध्य कार्यों का करना।

21. शत्रु सन्तापित सरदार की उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फलस्वरूप युद्ध आदि।[20]

अब रासो के सन्दर्भ में उपर्युक्त रूढ़ियों पर विचार करना उपयुक्त होगा-

शुक, हंस, कपोत आदि से संदेश भेजना-

हंस,शुक,सारिका,काग आदि सभी संदेशवाहक के रूप में काव्य और लोकगीत दोनों में मिलते रहे हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार,"शुक और सारिका, तोता और मैना, भारतीय परिवार के बहुत पुराने साथी हैं।" हंस ने नल-दमयंती के बीच संबंध स्थापित किया था। लोक गीतों में शुक,मैना और काग के अनगिनत उदाहरण प्राप्त होते हैं। पद्मावत का हीरामन पद्मावती और रतनसेन के मिलन का माध्यम है। नागमती भी पक्षी से संदेश भेजती है। खुम्माण रासो में भी रतिसुंदरी, खुम्माण को बुलाने के लिए मैना से संदेश भेजती है। वह कहती है-

बहिनी मारो काम सुधार। संदेशा दीज्यो भरतार ।।
पिउ सूं मुजरो गुदरावज्यो, ताजिम करि तेड़े लावज्यो।।[21]

रतिसुंदरी मैंना से कहती है, हे बहिन! मेरे इस काम को सफलता के साथ पूरा कर दे और मेरे पति को मेरा यह संदेश पहुँचा दो। मेरे प्रियतम से मेरा अभिवादन करके, उन्हें आदर सहित यहाँ बुला कर ले आना।

बन्दियों के मुख से कीर्ति- वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना-

अक्सर हम रासों काव्य या मध्यकाल के सूफी काव्यों में देखते हैं कि किसी व्यक्ति या पशु- पक्षी द्वारा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर राजा उस पर आसक्त हो जाता है। खुम्माण रासों में भी कनकलता द्वारा खुम्माण को रतिसुंदरी के बारे में पता चलता है। कनकलता कहती है कि दिल्ली में एक तोमरवंशी राजा राज करता है। उसकी पुत्री रतिसुंदरी रूप- सौन्दर्य में अप्सरा के समान है-

पुत्री रति सुंदरी पद्मणि। रूपें रंभ अपछर अवगुणी।।[22]

शिव-पार्वती-

लोक- कथाओं में शिव-पार्वती बहुत लोकप्रिय रहे हैं। पार्वती बड़ी ही दयालु है। वे अपने शिव को प्रायः ले जाती हैं और दुःखी मनुष्यों की सहायता करने पर विवश करती है। पद्मावती में भी राजा रत्नसेन शिव मंडप पर पहुँचता है और वहाँ पर तपस्या करता है। खुम्माण रासो में तिलोत्तमा अपना सिर काटने के लिए तलवार उठाती है तो संसार के स्वामी महादेव कहते हैं, हे स्त्री तुम अपना सिर मत काटो। देखो मैं तुम्हारे पति को जीवित कर दूँगा-

कमल म काटो कामनी, जंपे इम जगदीश।
पति ताहरो इक पलक में, जोयहु जीवाडीश।।[23]

षड्ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह वर्णन-

विरहिणी नारी कैसे दिन काटती है उसका विवरण वह अपने रूदन-गीत बारहमासा में प्रस्तुत करती है। विरहणियाँ इसके माध्यम से अपना विरह-निवेदन करती हैं। पद्मावत का बारहमासा अत्यन्त प्रसिद्ध है। खुम्माण रासो में तिलोत्तमा का विरह वर्णन बारहमासा पद्धति द्वारा दर्शाया गया है-

पिउ रहो पद्मणि कहें, आयो आघण मास।।
सयण न छंडे सीत रित, अबला पूरो आस।।[24]

अर्थात् तिलोत्तमा कहती है- हे प्रिय अग्रहायन(मार्गशीर्ष) मास आ गया है। भले आदमी शीत ऋतु में अपनी पत्नी को छोड़कर नहीं जाते। आप यहीं रहकर उसकी इच्छा की पूर्ति करें।

रासो की उपर्युक्त काव्य रूढ़ियों के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने लोक प्रचलित रूढ़ियों का उपयोग किया है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से उसमें विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों का आ जाना स्वाभाविक है। लोक कथाओं के माध्यम से अपभ्रंश के चरित काव्यों में अनेक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। उसी साहित्यिक परम्परा तथा मौखिक परम्परा से ये कथानक रूढ़ियाँ रासो में

प्रयुक्त हुई। रासो की इसी परम्परा को प्रेमाख्यानक परम्परा के प्रसिद्ध कवि जायसी ने पद्मावत् में निभाया है।

3.6 रासो की प्रबन्धात्मक रूढ़ियाँ-

ऊपर जिन रूढ़ियों की चर्चा की गई है वे आन्तरिक काव्य रूढ़ियाँ हैं। उनके अतिरिक्त काव्य की कुछ बाह्य रूढ़ियाँ होती हैं जिसके द्वारा कवि अपने महाकाव्य और काव्य को सुसज्जित तथा व्यवस्थित करता है। ये रूढ़ियाँ रामायण से लेकर संस्कृत, प्राकृत,एवं अपभ्रंश काव्यों में पाई जाती है। उसके बाद रासो में समाविष्ट होती हुई तथा उनकी परम्परा प्रेमाख्यानक काव्यों, रामचरित मानस और एक लम्बे अन्तराल के बाद आधुनिक महाकाव्यों में भी किसी न किसी रूप में पाई जाती है।

काव्य की वे प्रबन्धात्मक रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं-

क. सर्गबद्धता

ख. मंगलाचरण, इष्टदेव को नमन

ग. कवि का आत्मदैन्य प्रदर्शन

घ. सज्जन- दुर्जन चर्चा

ड़. श्रोता वक्ता शैली

सर्ग बद्धता-

वाल्मीकि रामायण में सर्गबद्धता का ही दूसरा रूप है काण्ड योजना। उसकी समस्त कथा आदि काण्ड, बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड आदि में विभाजित है। कालिदास के रघुवंश तथा माघ के शिशुपाल वध में सर्ग पद्धति का पालन मिलता है।

अपभ्रंश में सर्ग के स्थान पर सन्धि का प्रयोग किया गया। स्वयम्भू का हरिवंश पुराण तथा पुष्पदन्त कृत महापुराण आदि सभी काव्य सन्धियों में आबद्ध है। काव्य की यह परम्परा

जो संस्कृत,प्राकृत से अपभ्रंश में आई परन्तु उसकी चाल थोड़ी धीमी पड़ गई, फिर भी यह नियम पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। अपभ्रंश काव्यों का प्रभाव हिन्दी साहित्य के आदिकालीन रासो ग्रन्थों पर पड़ा। रासो काव्य 'समय' में आबद्ध है। जैसे-विजयपाल रासो और हम्मीर रासो किन्तु पृथ्वीराज रासो सर्ग में आबद्ध है। खुम्माण रासो के रचयिता दलपति विजय ने खण्ड योजना को अपनाया है। खुम्माण रासो खण्डों में विभाजित है।

आगे चलकर जायसी ने 'पद्मावत' में खण्ड योजना का प्रयोग किया गया। भक्तिकाल में महाकवि तुलसी ने अपनी विषय वस्तु के अनुरूप वाल्मीकी रामायण के समान काण्ड योजना का पालन किया। आधुनिक काल के महाकाव्य साकेत, प्रिय प्रवास, कामायनी आदि में संस्कृत परम्परा के सर्ग शैली का प्रयोग मिलता है।

मंगलाचरण-

मंगलाचरण को भारतीय साहित्य में विशेष माना गया है। संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थों में मंगलाचरण मिलता है। यह मंगलाचरण अनेक रूपों में प्राप्त होता है। कालिदास ने रघुवंश में अपने इष्टदेव पार्वती परमेश्वर की वन्दना की है-

"वागर्थाद्विव सम्पृक्तौ वागर्थः प्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।"[25]

रूद्रट के अनुसार कथा के आरम्भ में देवता या गुरू की वन्दना होनी चाहिए। रासो काव्यों में भी मंगलाचरण की परम्परा विद्यमान रही है। खुम्माण रासो में कवि ने मंगलाचरण की परम्परा को अपनाया है-

ओं ए मंत्र अपारं, सारद प्रणमामि माय सुपसण्ण।

सिद्धि रिद्धि बुद्धि सिरं, पूरई वर वेद षडिपुण्णं।।[26]

आगे चलकर भक्तिकाल में तुलसीदास ने भी इस परम्परा का निर्वाह किया है।

आत्म दैन्य भाव-

आत्म लघुता प्रदर्शित करके अपने अज्ञान को व्यक्त करना विनयी कवियों का स्वभाव होता है। कालिदास ने दो श्लोकों में आत्म लघुता प्रदर्शित की है। उन्होंने रघुवंश वर्णन करना वैसा ही माना जैसे बौने व्यक्ति द्वारा सागर संतरण।

आत्म दैन्य का यही भाव खुम्माण रासो में भी आया है। दलपति विजय कहते हैं कि हे माँ महामाया त्रिपुरेश्वरी! आप कृपा करके अपने सेवक से सानिध्य स्थापित करके उसकी सहायता करें। यह आपका ही बालक है-

सेवक सूँ सानिध करो, महिर करो महामाय।।

त्रिपुरा छोरू ताहरो, सानिध करो सहाय।।[27]

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि खुम्माण रासो एक सफल रासो काव्य है। पात्र,कथानक,शैली सभी दृष्टियों से यह एक महाकाव्य है। उद्देश्य की दृष्टि से काव्य उत्तम है परन्तु अधिक राजाओं के चरित्र का समावेश होने से कथा बहुत बड़ी और बोझिल हो जाती है। चरित्र उजागर करने में कवि ने सफलता प्राप्त की है। काव्य प्रवृत्तियों की विशेषताओं से काव्य सुसज्जित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. रासो काव्य धाराः डा. विजय कुलश्रेष्ठः किताब महलः प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ संख्या64
2. वहीः पृष्ठ संख्या 65
3. खुम्माण रासोः दलपति विजयःसंपादक ब्रजमोहन जावलियाः महाराणा प्रताप स्मारक उदयपुरः प्रथम संस्करण अप्रैल 2001, पृष्ठ संख्या 180
4. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप- विकासः हिन्दी प्रचारक पुस्कालयः वाराणसीः द्वितीयावृत्त सन् 1962
5. खुम्माण रासोः दलपति विजयःसंपादक ब्रजमोहन जावलियाःपृष्ठ संख्या 95
6. वहीः पृष्ठ संख्या463
7. वहीः पृष्ठ संख्या43
8. हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्लः अनुपम प्रकाशन अशोक राजपथ पटना, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 2013
9. खुम्माण रासोः दलपति विजयःसंपादक ब्रजमोहन जावलियाःपृष्ठ संख्या 471
10. वहीः पृष्ठ संख्या 217
11. वहीः पृष्ठ संख्या 220
12. वहीः पृष्ठ संख्या 220
13. चिन्तामणिः आचेर्य रामचन्द्र शुक्लःलोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 105
14. वहीः पृष्ठ संख्या 92
15. डिंगल में वीररसः संपादकः मोतीलाल मेनारियाः हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग संवत् 2003 पृष्ठ संख्या 1
16. वहीः पृष्ठ संख्या19

17. वहीः पृष्ठ संख्या19

18. खुम्माण रासोः दलपति विजयःसंपादक ब्रजमोहन जावलियाःपृष्ठ संख्या 55

19. वहीःपृष्ठ संख्या 55

20. हिन्दी साहित्य का आदिकालः हजारी प्रसाद द्विवेदीःवाणी प्रकाशनः संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 155

21. खुम्माण रासोः दलपति विजयःसंपादक ब्रजमोहन जावलियाःपृष्ठ संख्या 275

22. वहीः पृष्ठ संख्याः 159

23. वहीः पृष्ठ संख्या 358

24. वहीः पृष्ठ संख्याः 281

25. रघुवंश,कालिदास

26. खुम्माण रासोः दलपति विजयःसंपादक ब्रजमोहन जावलियाःपृष्ठ संख्या51

27. वहीःपृष्ठ संख्या 52

उपसंहार

हिन्दी साहित्य की शुरूआत 10 वीं सदी से मानी जाती है। तब से लेकर अब तक हिन्दी साहित्य संवेदना, शिल्प और भाषा तीनों के आधार पर एक लम्बी दूरी तय कर चुका है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन के लिए इसे विभिन्न कालखण्डों में विभाजित किया गया है और फिर युगीन प्रवृत्ति के आधार पर उसका नामकरण किया गया है ताकि साहित्य-समाज के अंर्तसंबंध, साहित्यिक विकास-क्रम की दिशा और युगीन प्रवृत्तियों का पता लगाया जा सके। इसी के परिप्रेक्ष्य में 10 वीं सदी से 14 वीं सदी तक के कालखण्ड के लिए वीरगाथा काल, चारण काल, सिद्ध सामंत काल और और आदिकाल जैसे नाम सुझाए गए हैं।

आदिकाल में अनेक रासो काव्य लिखे गए। दलपति विजय द्वारा रचित 'खुम्माण रासो' उनमें से एक है। इसके रचनाकाल को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में, लेखकों में विवाद है। इस विवाद के पीछे वास्तविकता यह है कि कर्नल जेम्स टॉड के अतिरिक्त किसी ने भी इस ग्रन्थ के दर्शन तक नहीं किए थे। और तो और यह रचना पूरी प्राप्त नहीं हुई जिसकी वजह से उसके रचनाकाल का पता लगाना और भी मुश्किल हो जाता है। जो प्रति प्राप्त होती है वह अपूर्ण है और उसमें महाराणा प्रताप तक का वर्णन है। इसके आधार पर शुक्ल जी ने अनुमान लगाया है कि यह सत्रहवीं शताब्दी की रचना है। कृति के रचनाकाल के विषय में शोधपूर्ण प्रकाश डालने का श्रेय अगरचंद नाहटा और मोतीलाल मेनारिया को जाता है। नाहटा ने रचनाकाल का समय सम्वत् 1730 और 1760 के मध्य माना है वहीं मोतीलाल मेनारिया ने महाराजा संग्रामसिंह द्वितीय के राज्यकाल सम्वत् 1767 से सम्वत् 1790 माना है। इस आधार पर यह रचना 17 वीं शताब्दी की प्रतीत होती है।

रासो की प्रतियों की बात करें तो दलपति विजय द्वारा लिखित मूल आदर्श प्रति या उसके द्वारा संशोधित कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। खुम्माण रासो की मात्र दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं। एक भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना में और दूसरी रॉयल एशियाटिक सोसयटी, लंदन में। मेरे पास जो प्रति उपलब्ध है वह डॉ. ब्रजमोहन जावलिया द्वारा संपादित तथा महाराणा प्रताप स्मारक समिति,

उदयपुर(2001) द्वारा प्रकाशित है।जिसके आधार पर मैंने अपने शोध को एक नया आधार देने का प्रयास किया है।

'खुम्माण रासो' के शीर्षक को पढ़कर ऐसा लगता है कि अन्य रासो की तरह दलपति विजय ने भी अपने काव्य का आधार खुम्माण का चरित्र वर्णन बनाया होगा। परन्तु रासो का सम्पूर्ण अध्ययन करने पर पता चलता है कि कवि ने खुम्माण के चरित्र को उजागर करने के साथ-साथ खुम्माण की वंश परम्परा में अलणसी से लगातार महाराणा राज सिंह तक के चरित्र को दिखाने का भी प्रयत्न किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कवि मेवाड़ के सम्पूर्ण इतिहास को अपनी रचना में समेटना चाहता था या फिर यह हो सकता है कि इस राजवंश के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करना चाहता था। यह भी हो सकता है कि कवि ने काव्य का विस्तार करते समय उसके शीर्षक को बदलने का प्रयत्न नहीं किया। कवि द्वारा लिखित कोई मूल प्रति प्राप्त न होने से हम यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि दलपति ने सिर्फ खुम्माण का ही वर्णन किया हो और उसके बाद किसी और ने उसमें आगे की कथा जोड़ दी हो। परन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य खुम्माण के जीवन चरित्र का वर्णन करना ही जान पड़ता है कि क्योंकि खुम्माण के जन्म से लेकर मृत्यु तक का वृहद् वर्णन मिलता है।

'खुम्माण रासो' की कथा आठ खण्डों में विभक्त है। इसमें कवि ने मेवाड़ के सामंत बापा से लेकर मेवाड़ के राणा राज सिंह के शौर्य और वीरता का वर्णन किया है। जैसा कि दलपति विजय के दरबारी कवि होने का कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता है तो उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने स्वामीभक्ति के अभिभूत होकर यह काव्य नहीं लिखा है बल्कि वीर पूजा(Hero-Worship) की प्रवृत्ति को अपनाया है। वीरगाथा काल में जो कुछ सम्भव था तथा प्रत्यक्ष था उसी को कवि ने वाणी प्रदान की है। सभी कवि युग- चेतना के आलोक में ही काव्य की रचना करते हैं कवि दलपति भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं रहे हैं। अन्य रासो ग्रन्थों की तरह 'खुम्माण रासो' के मूल में भी युद्ध और प्रेम ही है। इस काव्य की सर्वाधिक आकर्षित करने वाली विशेषता है वीर और शृंगार का सम्मिश्रण। वीरता के सन्दर्भ में एक ओर जहाँ कवि ने रणक्षेत्र का सुन्दर वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर विलास लीलाओं का भी सरस और मधुर वर्णन किया है। तत्कालीन नरेशों के एक हाथ में मान मर्दन करने वाली तलवार रहती थी तो दूसरा हाथ सदैव प्रिया के आलिंगन को उठा रहता था। उनके नेत्रों से युद्ध भूमि में शौर्य की

चिनगारियाँ फूटती थीं तो केलि-गृह में यौवन की मदिरा छलक-छलक जाती थी। वीर और शृंगार का अनूठा मिश्रण सम्पूर्ण कृति में दिखाई देता है। इससे इस बात का पता चलता है कि तत्कालीन नरेश या तो युद्ध करते थे या राग-रंग में विलीन रहते थे।

रासो को इतिहास की कसौटी पर कसना हमारा लक्ष्य नहीं है। यह कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं है, हाँ एक ऐतिहासिक काव्य अवश्य है। साहित्य में कल्पना का समावेश आवश्यक होता है, कल्पना के बिना वह कोरा तथ्य हो जाएगा और तथ्यों को हम साहित्य नहीं कह सकते। इसलिए खुम्माण रासो एक ऐतिहासिक काव्य है। उसका स्वरूप पुराना है और अपभ्रंश से विकसित है। जिस समय यह काव्य लिखा गया उस समय मुगलों और इस्लाम सभ्यता का पदार्पण भारत में हो गया था। विदेशी शक्ति का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? इसके प्रमाण भी छन्दों में मिलते हैं। साथ ही राजपूत राजाओं के पारस्परिक संघर्ष और द्वेष का विनाशकारी रूप रासों में दिखाई देता है। यदि सामंतवाद इन शक्तियों से संगठित और एक-जुट होकर भिड़ जाता तो भारतीय जीवन और समाज व्यवस्था अटूट बनी रहती पर ऐसा सम्भव नहीं था। क्योंकि सामंती स्वभाव में अहं की प्रबलता थी और जन- जीवन की उपेक्षा थी। इनके युद्ध का कारण देश की तथा जन-जीवन की रक्षा करना नहीं था बल्कि युद्ध का कारण नारी लिप्सा, पड़ोसी राजाओं का मान मर्दन और भूमि अर्जन था।

राजस्थान के इतिहास में सतीत्व की रक्षा के लिए यहाँ की नारियों द्वारा जौहर करने की कथा तो हर युग में दिखाई देती है, पर मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्ध भूमि में शौर्य का प्रदर्शन करने वाली स्त्रियों के विषय में शायद ही किसी ने लिखा हो। तत्कालीन समाज में जब स्त्रियों को सिर्फ भोग-विलास की वस्तु समझा जाता था उस समय अबला कही जाने वाली नारियों की शक्ति का प्रदर्शन कराकर कवि ने भावी पीढ़ी को इस राह पर चलने की प्रेरणा दी है। ऐसी नारियों में कवि ने राजकुमार खुम्माण प्रसंग में महारानी रतिसुंदरी, देवलदे और रांणगदे जैसी राजवंश की रमणियों के ही नहीं तंबोली,चित्तारिन,माली, और कायस्थ जैसी जातियों में जन्मी कनकलता,कमला, विमला और परिमला एवं वणिक पुत्री तिलोत्तमा, नगरवधू लाखा के तथा महाराणा उदयसिंह प्रसंग में उनकी प्रेमिका उपपत्नी पेमा खातिन को भी युद्ध क्षेत्र में अवतरित होकर अपने छलबल, बुद्धिबल,और भुजबल के साथ शक्ति का प्रदर्शन करते दिखाया है। यही नहीं जब राजा खुम्माण चित्रकार की विवाहित बहु कनकलता

पर मुग्ध होकर उससे विवाह करने के लिए कहता है तो कनकलता बड़ी ही चतुराई से मना करती हुई कहती है कि पराई स्त्री और पराई वस्तु पर कुदृष्टि डालना चोरी होता है। आप राजा है अतः किसी राजकुमारी से विवाह करिए और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करिए। यहाँ पर कवि ने स्त्री के वाक् चातुर्य को दिखाया है। ऐसा ही एक प्रसंग खुम्माण और रतिसुंदरी के संबंध में मिलता है। रतिसुंदरी से विवाह करके खुम्माण भोग- विलास में लिप्त रहते हुए जीवन व्यतीत कर रहा था, एक दिन अचानक वह रतिसुंदरी को उसकी विवाह से पूर्व ली गई प्रतिज्ञा के विषय में याद दिलाते हुए उलाहना देता है कि जो व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा को पूरा नहीं कर सकते उनका जन्म लेना ही व्यर्थ है। इस बात से रानी के हृदय को चोट पहुँचती है और वह प्रतिज्ञा पूर्ण करने का निर्णय लेती है। और अंततः वह अपने कार्य में सफल होती है। इस प्रकार स्त्रियों की प्रतिष्ठा को बनाए रखना कवि की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अतः इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कवि ने तत्कालीन परिस्थिति में स्त्रियों की एक अलग छवि पेश की है।

'खुम्माण रासो' में कवि ने वर्णनात्मक शैली को अपनाया है और इसमें बहुत सारी कथाएँ हैं जिससे कथा में बिखराव दिखाई देता है और समझने में कठिनाई होती है। एक कथा को दूसरी कथा से जोड़ने में मुश्किलें आती हैं। रासो में मुख्य कथा खुम्माण के जीवन की है और बहुत सारी गौण कथाएँ हैं, किन्तु गौण कथाएँ मुख्य कथा को समृद्ध नहीं करती हैं वह सिर्फ मुख्य कथा का विस्तार है। यदि हम उन्हें हटा भी दें तो मुख्य कथा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मुख्य कथा अपने आप में पूर्ण है। कवि की इस वर्णनात्मक शैली से काव्य में बोझिलता आ जाती है। एक- एक वस्तु का वर्णन करने में कवि ने 20-20 दोहों का प्रयोग किया है। कम दोहों में भी कवि अच्छा वर्णन कर सकता था। कवि अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में सफल है उसने सफलतापूर्वक खुम्मान के जीवन वृत्त को वर्णित किया है और साथ ही साथ उसके वंश विस्तार को वर्णित करने में भी सफल है।पात्रों की दृष्टि से यदि हम रासो का मूल्यांकन करें तो आठ खण्ड होने की वजह से पात्रों की भरमार है। इसके साथ ही मेवाड़ के सम्पूर्ण राजवंश का वर्णन है तो प्रत्येक पात्र को याद रख पाना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु सभी पात्र अपना चरित्र निभाने में पूर्णतः सफल हैं और पात्र स्वाभाविक रूप से कथा में आए हैं। किसी को भी बिना वजह ठूँसा नहीं है। अतः पात्र संरचना में कवि प्रशंसनीय है। व्यक्तियों के चरित्र चित्रण के अतिरिक्त हिन्दू- मुस्लिम दो

जातियों के चरित्र का उद्घाटन भी रासो में हुआ है। इस्लाम की धर्मान्धता और बर्बरता, राजपूतों के शौर्य, उनकी डाँवाडोल स्थिति और उनके पतन का मार्मिक और क्षोभपूर्ण वर्णन रासो में किया गया है।

कवि ने लोक-संस्कृति को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। राजस्थान में गणगौर तीज बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है जिसमें विवाहित स्त्रियाँ अपने पति के लिए व्रत और पूजा करती हैं।इसका वर्णन कवि ने बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। इसके साथ ही साथ विवाह, वहाँ के रीति- रिवाज, लोक गीतों का वर्णन भी कवि ने किया है जिससे यह पता चलता है कि कवि को मेवाड़ तथा वहाँ की संस्कृति के विषय में पूरी जानकारी थी।

भाषा और शैली के आधार पर यदि हम इस रासो ग्रन्थ का मूल्यांकन करें तो तत्कालीन परिस्थिति में जो विशेषताएँ विद्यमान थीं खुम्माण रासो उस पर खरा उतरता है, अलंकारों का कहीं भी चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन नहीं किया गया है बल्कि वह आवश्कतानुसार काव्य में स्वतः ही आ गये हैं। रासो का मुख्य रस वीर रस है और शृंगार उसका सहायक रस है यह कवि ने बड़े ही अच्छे ढंग से दिखाया है। कवि ने काव्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए दोहा,चौपाई, सवैया, कवित्त छन्दों का प्रयोग किया है। अपभ्रंश के अधिकांश कवि ने दोहा छन्द में ही अपनी बात कही है। डिंगल भाषा में यह काव्य रचा गया है जिसे राजस्थानी हिन्दी के नाम से जाना जाता है। काव्य में अनेक स्थलों पर प्राकृत गाथाओं के माध्यम से नीतिवचन दिए गए हैं। प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में इष्ट देवियों की स्तुति के लिए भी गाथाएँ दी गई हैं।

अतः हम रासो काव्य परम्परा के आधार पर यदि इसका मूल्यांकन करें तो निश्चय ही खुमाण रासो एक वीरगाथा काव्य है जो मेवाड़ के राजपूतों की वीरता को प्रदर्शित करती है। पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो की तो हर जगह चर्चा होती है। खुम्माण रासो को सदैव उपेक्षित रखा गया। यहाँ तक कि इसकी कथा भी किसी को नहीं मालूम है। अतः मेरा मुख्य उद्देश्य इसकी कथावस्तु से परिचित कराना है। यह ग्रन्थ मेवाड़ का इतिहास जानने में भी सहायक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ :

सम्पादक - डॉ. ब्रजमोहन जावलिया : **खुम्माण रासो (द्वितीय भाग तथा तृतीय भाग)**

सज्जन सिंह राणावत महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर

तथा संस्करण - 2001

डॉ. कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय

सहायक ग्रन्थ

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : **हिन्दी साहित्य का आदिकाल**

वाणी प्रकाशन दिल्ली

संस्करण- 2012

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : **हिन्दी साहित्य का इतिहास**

प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली

संस्करण-2011

डॉ. नामवर सिंह : **हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग**

लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

संस्करण – 2010

सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : **जायसी ग्रन्थावली**

प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली

संस्करण – 2012

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : **हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास**

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

संस्करण – 2011

डॉ. रामचन्द्र तिवारी : **हिन्दी का गद्य-साहित्य**

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

संस्करण – 2014

डॉ. शिवकुमार मिश्र : **हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिवृत्त**

वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली

संस्करण – 2009

डॉ. बच्चन सिंह : **हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास**

राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

संस्करण – 2013

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : **हिन्दी साहित्य का अतीत : प्रथम भाग**

वाणी प्रकाशन दिल्ली

संस्करण – 2006

डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ : **रासो काव्य-धारा**

किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद

संस्करण – 1984

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी : **आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका**

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

विजयेन्द्र स्नातक : **हिन्दी साहित्य का इतिहास**

साहित्य अकादमी नयी दिल्ली

संस्करण - 2004

डॉ. रामकुमार वर्मा : **हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास**

रामनारायण लाल प्रकाशक, इलाहाबाद

संस्करण – 1954

डॉ. मोहन अवस्थी : **हिन्दी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास**

वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली

संस्करण – 2008

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : **हिन्दी साहित्य की भूमिका**

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

संस्करण – 2012

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी : **हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास**

ओरियंट ब्लैकस्वॉन

संस्करण – 2010

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : **हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास**

लोकभारती प्रकाशन

संस्करण – 2011

सं. डॉ. नगेन्द्र तथा डॉ. हरदयाल : **हिन्दी साहित्य का इतिहास**

मयूर पेपरबैक्स नोएडा

संस्करण – 2012

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' : **बिहारी-रत्नाकर**

प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली

संस्करण – 2014

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : **हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास**

लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

संस्करण – 1990

डॉ. सुमन राजे : **साहित्येतिहास (आदिकाल)**

ग्रन्थम प्रकाशन कानपुर

संस्करण -1976

डॉ. राजबली पाण्डेय : **हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास**

प्रथम भाग

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

संस्करण – प्रथम संवत् 2014 वि.

डॉ. मोतीलाल मेनारिया : **राजस्थानी भाषा और साहित्य**

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

संस्करण – 1999

डॉ. मनमोहन गौतम : **पद्मावत का काव्य वैभव**

मैकमिलन प्रकाशन

संस्करण – 1974

डॉ. मोतीलाल मेनारिया : **डिंगल में वीररस**

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

द्वितीय संस्करण